www.emanjari.com

मंजरी

स्त्री के मन की

RNI Title Code: BIHBIL02442

अंक 33

वर्ष 2026

आधी आबादी पूरा सच

स्वतंत्रता और नियंत्रण का द्वंद्व

संकल्पना

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है 'मंजरी'।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी कोशिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवेदनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामाजिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में पूरी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साहित किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके।

समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेहद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

हमारी बात

संरक्षण

प्रो. किरण घई
पटना वीमेंस कॉलेज के हिंदी विभाग की भूतपूर्व रीडर

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास, पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र पटना विवि

परामर्श

डा. शरद कुमारी
पूर्व महासचिव, बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
स्वतंत्र लेखिका एवं शोधकर्ता

सुजाता गुप्ता
लेखिका, कवयित्री एवं अनुवादक

संपादकीय

छोटे शहरों से बड़े शहरों की ओर बढ़ती लड़कियों की यह यात्रा केवल भौगोलिक परिवर्तन नहीं, बल्कि एक गहरे सामाजिक और मानसिक बदलाव की कहानी है। यह सफर स्वतंत्रता की खोज और नियंत्रण की परतों के बीच लगातार झूलता रहता है।

बड़े शहर, जहाँ अवसरों की चमक है, वहीं अपने भीतर अनगिनत अदृश्य सीमाएँ भी समेटे हुए हैं। छोटे शहरों से आई लड़कियाँ जब पढ़ाई या नौकरी के लिए इन शहरों में कदम रखती हैं, तो उन्हें पहली बार अपनी पसंद–नापसंद के साथ जीने का अवसर मिलता है। अपने समय का निर्णय, अपने करियर की दिशा, और अपनी पहचान गढ़ने की स्वतंत्रता। यह स्वतंत्रता उनके लिए एक नई ऊर्जा और आत्मविश्वास लेकर आती है।

लेकिन इस स्वतंत्रता के साथ ही नियंत्रण के नए रूप भी सामने आते हैं। पीजी और हॉस्टल के नियम– रात की पाबंदियाँ, गेट लॉक होने का समय, आगंतुकों पर रोक– अक्सर सुरक्षा के नाम पर लगाए जाते हैं, पर कई बार ये लड़कियों की स्वायत्तता को सीमित करने का काम करते हैं। सवाल यह उठता है कि क्या यह सुरक्षा वास्तव में संरक्षण है, या फिर एक और प्रकार का सामाजिक नियंत्रण?

इसके अलावा, शहर में मौजूद नजरें– सहकर्मियों की, मकान मालिकों की, समाज की– भी एक अदृश्य निगरानी का हिस्सा बन जाती हैं। लड़कियों के पहनावे, आने–जाने के समय और उनके व्यक्तिगत जीवन पर टिप्पणी करना एक सामान्य बात बन जाती है। इस तरह, एक ओर वे स्वतंत्रता का अनुभव करती हैं, तो दूसरी ओर लगातार जज किए जाने का दबाव भी झेलती हैं।

आर्थिक आत्मनिर्भरता इस यात्रा का सबसे सशक्त पहलू है। अपनी कमाई पर अधिकार लड़कियों को निर्णय लेने की शक्ति देता है, लेकिन इसके साथ ही उन्हें कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव, असमान वेतन, और कभी–कभी उत्पीड़न जैसी चुनौतियों का भी सामना करना पड़ता है। यह विरोधाभास उनके अनुभव को और जटिल बना देता है। इस द्वंद्व का एक मनोवैज्ञानिक पक्ष भी है। परिवार से दूर रहना, अकेले निर्णय लेना, और हर कदम पर खुद को साबित करने का दबाव– ये सब मिलकर मानसिक थकान

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

आवरण चित्र

वरिष्ठ अतिथि कलाकार
अनु प्रिया

लोगो डिजाइन

दीया भारद्वाज

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार
कुमार गौरव

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612.2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

और असुरक्षा की भावना को जन्म देते हैं। फिर भी, यही अनुभव उन्हें अधिक मजबूत और आत्मनिर्भर बनाते हैं।

बड़े शहर में रहना इन लड़कियों के लिए एक सीखने और आत्मनिर्भर बनने की प्रक्रिया है, लेकिन यह रास्ता आसान नहीं होता। वे लगातार बाहरी चुनौतियों और अंदरूनी संघर्षों से जूझते हुए अपनी पहचान गढ़ती हैं। उनकी स्थिति को समझना केवल सहानुभूति का विषय नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना और लैंगिक असमानताओं को पहचानने का भी प्रश्न है। अंततः, यह स्पष्ट होता है कि बड़े शहरों में लड़कियों की स्वतंत्रता पूर्ण नहीं, बल्कि सशर्त है। यह स्वतंत्रता और नियंत्रण के बीच एक संतुलन साधने की निरंतर प्रक्रिया है।

इस "आधी आबादी" की कहानी दरअसल "पूरा सच" इसलिए है क्योंकि यह केवल व्यक्तिगत संघर्ष नहीं, बल्कि हमारे समाज की सोच, संरचना और बदलाव की दिशा को भी उजागर करती है। यह सवाल हम सबके सामने रखती है–क्या हम सच में लड़कियों को स्वतंत्र देखना चाहते हैं, या केवल एक सीमित, नियंत्रित स्वतंत्रता ही स्वीकार्य है? इन्हीं सवालों पर आधारित मंजरी का यह अंक आप जरूर पढ़ें।

Nsrivastava

नीना श्रीवास्तव

अनुक्रम

1

7

12

19

22

अनु प्रिया
(कलाकार / लेखिका)

सुपौल बिहार में जन्मीं अनु प्रिया जी के साठ से अधिक किताबों के आवरण एवं पत्र–पत्रिकाओं में रेखाचित्र प्रकाशित हो चुके हैं। साहित्य अकादमी, राजकमल प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, अल्टरनोट प्रकाशन, अगोर प्रकाशन, प्रकाशन विभाग आदि से किताबों के आवरण पर निरंतर इनके द्वारा बनाये गए चित्र का प्रकाशन होता रहता है।

थीम पेपर

केवल भाषण नहीं, स्त्रियों के साथ व्यवहार में भी संतुलन जरूरी

डॉ शरद कुमारी

प्रोग्राम मैनेजर, एक्शन एड, पटना तथा बिहार महिला समाज की पूर्व महासचिव

मानव सभ्यता के हर चरण में पितृसत्ता अपने अलग–अलग रूप में विद्यमान रही है। लेकिन असमानता की आधारशिला पर खड़ी विवाह और परिवार संस्था ने महिलाओं और लड़कियों की गतिशीलता को सबसे ज्यादा नियंत्रित किया है। इसलिए इस नियंत्रण से निकलते ही जब एक लड़की बड़ी चकाचौंध की दुनिया में कदम रखती है तो उसके लिए इस सामाजिक ढांचा में संतुलन बनाना बहुत कठिन हो जाता है। अपने विचारों में, भाषणों और योजनाओं में उन्हें लगातार समाज के द्वारा, सरकार के द्वारा आगे बढ़ाने की प्रेरणा दी जाती है तो दूसरी तरफ व्यावहारिकता में उन्हें हर कदम पर सिर्फ एक शरीर, कमजोर तथा आसानी से इस्तेमाल की जाने वाली वस्तु समझा जाता है यानी सभी प्रगतिशीलता के बावजूद पूरे परिदृश्य में स्त्रियों को देखे जाने वाले नजरिए में कोई खास बड़ा बदलाव अभी

तक नहीं हुआ है। सभी जानते और समझते हैं कि महिलाओं और लड़कियों को आगे बढ़ना चाहिए लेकिन दायरे और नियंत्रण के साथ या जब तक उनकी स्वार्थ सिद्धि होती रहे। दूसरी तरफ भौतिक दुनिया के चमकीले रेशमी प्रलोभन, आगे बढ़ाने के संक्षिप्त रास्ते (शार्ट–कट) उन्हें लगातार उकसाते हैं। परिवार व समाज के रूढ़िवादी मकड़जाल से निकलने का यह मौका कभी उन्हें सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ाता है तो कभी नकारात्मक दिशा में बढ़ाने को मजबूर कर देता है। सही शिक्षा और जागरूकता के अभाव में हमारी बेटियों को यह पता नहीं कि आज हमारे पास जो भी अधिकार उपलब्ध हैं, पूरी दुनिया के स्तर पर हमारी महिला पूर्वजों ने अपने–अपने समय में अपने–अपने तरीके से लंबे संघर्ष के बाद इन्हें हासिल किया है। चाहे भारत की हमारी बौद्ध भिक्षुणी महिलाएं हों, सती प्रथा का मामला हो, सावित्रीबाई फुले, पंडिता रमाबाई, ताराबाई शिंदे, फातिमा शेख, राजाराम मोहन राय, सिमोन द बोबूआर, जान स्टुअर्ट मिल या फिर मेरी वाल्सटन क्राफ्ट के लेखन और संघर्ष के सहारे होने वाले विश्वस्तरीय मताधिकार आंदोलन का मामला, शिक्षा, स्वास्थ्य सहित हर छोटी–छोटी चीजों से संबंधित जितने भी अधिकार हैं या कानून बने हैं, बाल विवाह या विवाह और यौन संबंध की उम्र में महिलाओं की सहमति हो, घरेलू हिंसा, कार्य स्थल पर भेद–भाव या यौनिक हिंसा, बलात्कार या लैंगिक भेदभाव के आधार पर उत्पन्न अन्य विभिन्न प्रकार की हिंसाएं या भेदभाव का मामला, नौकरी में सही स्थान, वेतन या सुविधाओं का मामला, हर जगह हमारे पूर्वजों ने संघर्ष से अपने अधिकार को और विभिन्न कानून को समाज और सरकार से हासिल किया है। आज भले ही पूरी दुनिया में प्रगतिशीलता दिखती है समाज और सरकार चाहती हैं कि आधी आबादी आगे बढ़े लेकिन उसके लिए जो व्यवस्थाएं होनी चाहिए, लोगों की सोच और व्यवहार में जो बदलाव होने चाहिए उनका दूर–दूर तक नामोनिशान नहीं है। इन परिस्थितियों में जब हमारी आज की युवा बेटियां अपने घरों से, कस्बों और छोटे शहरों से बाहर निकलती हैं तो इस दुनिया का बाजार और पुरुषों के वर्चस्व वाले माहौल में हर कदम उनके लिए दुश्वारियां लेकर आता है।

बाजारवाद और विकास के नये दौर में युवा लड़कियों का द्वंद्व

युवा लड़कियों के लिए आज बाजारवाद और विकास की नई परिभाषा सबसे बड़ी चुनौती है। अपनी जरूरतों को पूरा करने के चक्कर में नई पीढ़ी पर परिवार और समाज का भी अत्यधिक दबाव है। ऐसे में जो युवा संवेदनशील होते हैं और धरातल से जुड़कर काम करना चाहते हैं, वे भी कहीं न कहीं आर्थिक और सामाजिक बाधाओं के कारण आगे नहीं बढ़ पाते हैं।" आज की पीढ़ी पिछली पीढ़ियों की तुलना में कहीं अधिक तेज है और चौबीसों घंटे सूचनाओं से घिरी है। उनके पास सीखने के तेज और नए–नए साधन हैं। ऐसे में उन्हें सही और गलत का फर्क समझाना बड़ी चुनौती है, और उन्हें सही मार्गदर्शन देने की जिम्मेदारी सरकार, समाज और परिवार की है। हमने अपने संघर्षों से जो कुछ पाया है, उसे संजोने और आगे बढ़ाने का दायित्व आज की युवा पीढ़ी के कंधों पर है, लेकिन उन्हें सही राह दिखाने की महती जिम्मेदारी हम सबको मिलकर निभानी होगी।

सभी जानते और समझते हैं कि महिलाओं और लड़कियों को आगे बढ़ना चाहिए लेकिन दायरे और नियंत्रण के साथ या जब तक उनकी स्वार्थ सिद्धि होती रहे। दूसरी तरफ भौतिक दुनिया के चमकीले रेशमी प्रलोभन, आगे बढ़ाने के संक्षिप्त रास्ते (शार्ट–कट) उन्हें लगातार उकसाते हैं। परिवार व समाज के रूढ़िवादी मकड़जाल से निकलने का यह मौका कभी उन्हें सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ाता है तो कभी नकारात्मक दिशा में बढ़ाने को मजबूर कर देता है।

युवा महिलाओं पर सांस्कृतिक दबाव

भारत के छोटे शहरों और कस्बों से हर साल हजारों लड़कियाँ पढ़ाई, नौकरी और अपने सपनों को पूरा करने के लिए बड़े शहरों की ओर जाती हैं। यह सफर केवल भौगोलिक दूरी तय करने का नहीं होता, बल्कि यह मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बदलावों से भरी एक लंबी यात्रा भी होती है। एक तरफ बड़े शहर उन्हें स्वतंत्रता, अवसर और आत्मनिर्भरता देते हैं, वहीं दूसरी तरफ परिवार, समाज और व्यवस्था का नियंत्रण उनके जीवन पर लगातार बना रहता है। यही द्वंद्व आज की युवा लड़कियों की सबसे बड़ी वास्तविकता है। छोटे शहरों में अक्सर लड़कियों की जिंदगी तय सीमाओं के भीतर चलती है, किससे बात करनी है, कितने बजे बाहर जाना है, क्या पहनना है, कहाँ पढ़ना है, किससे दोस्ती करनी है, इन सब पर परिवार और समाज की गहरी निगरानी रहती है।

बड़े शहर पहुँचते ही पहली बार उन्हें कुछ व्यक्तिगत फैसले लेने का अवसर मिलता है। वे अपने समय का प्रबंधन करती हैं, अकेले यात्रा करती हैं, नए लोगों से मिलती हैं, अपने करियर और जीवन को लेकर निर्णय लेने लगती हैं। यह अनुभव कई लड़कियों के लिए आत्मविश्वास और पहचान निर्माण का आधार बनता है, लेकिन यह स्वतंत्रता पूरी तरह सहज नहीं होती। इसके साथ अपराधबोध, डर और सामाजिक दबाव भी जुड़ा होता है। बहुत–सी लड़कियाँ हर दिन यह संतुलन बनाने की कोशिश करती हैं कि "इतनी स्वतंत्र भी न दिखें कि परिवार को असुरक्षित लगे, और इतनी नियंत्रित भी न रहें कि अपने सपनों को छोड़ना पड़े।"

थीम पेपर

परिवार का भरोसा और लगातार नियंत्रण

बड़े शहर में रहने वाली कई लड़कियों के फोन पर रोज के सवाल लगभग समान होते हैं,
"कहाँ हो?"
"किसके साथ हो?"
"इतनी देर क्यों हुई?"
"लड़कों से दूरी रखना।"
यह चिंता कई बार प्रेम और सुरक्षा से पैदा होती है, लेकिन धीरे–धीरे यह नियंत्रण का रूप ले लेती है। तकनीक ने भी निगरानी को आसान बना दिया है, लगातार कॉल, वीडियो कॉल, लोकेशन शेयर करना, सोशल मीडिया पर नजर रखना आदि। परिवार अक्सर यह मानकर चलता है कि बड़े शहर "खराब" हैं और लड़की को हर समय खुद को बचाकर रखना होगा। परिणामस्वरूप लड़की दोहरी जिंदगी जीने लगती है। एक वास्तविक जीवन, और दूसरा वह जीवन जो वह परिवार को दिखाती है।

सुरक्षा बनाम स्वतंत्रता

लड़कियों के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह होती है कि उन्हें हर समय अपनी सुरक्षा के प्रति सजग रहना पड़ता है। रात में यात्रा करना, किराए का घर ढूँढना, सार्वजनिक परिवहन का इस्तेमाल, कार्यस्थल पर व्यवहार, हर जगह उन्हें अतिरिक्त सावधानी बरतनी पड़ती है। दुर्भाग्य से समाज अक्सर सुरक्षा की जिम्मेदारी व्यवस्था पर डालने के बजाय लड़कियों पर डाल देता है। उन्हें कहा जाता है–
"रात में मत निकलो।"
"ऐसे कपड़े मत पहनो।"
"ज्यादा खुलकर मत रहो।"
यानी खतरे को खत्म करने के बजाय लड़कियों की स्वतंत्रता को सीमित कर दिया जाता है।

आर्थिक आत्मनिर्भरता और मानसिक दबाव

नौकरी करने वाली लड़कियाँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनना चाहती हैं, लेकिन इसके साथ कई मानसिक दबाव भी आते हैं। उनसे घर का खर्च भेजने की अपेक्षा होती है, परिवार की "इज्जत" बनाए रखने का दबाव होता है, और कई बार जल्दी शादी के लिए भी लगातार कहा जाता है। कार्यस्थल पर भी लैंगिक भेदभाव, असुरक्षा, वेतन असमानता और उत्पीड़न जैसी समस्याएँ मौजूद हैं। कई लड़कियाँ इन अनुभवों के बारे में खुलकर बात नहीं कर पातीं क्योंकि उन्हें डर होता है कि परिवार उन्हें वापस बुला लेगा।

दोस्ती, रिश्ते और नैतिकता की निगरानी

बड़े शहरों में लड़कियाँ विभिन्न पृष्ठभूमि के लोगों से मिलती हैं। उनके विचार बदलते हैं, दोस्ती और रिश्तों को लेकर समझ विकसित होती है। लेकिन समाज अब भी लड़कियों की निजी जिंदगी को "चरित्र" से जोड़कर देखता है। यदि कोई लड़की अपने फैसले खुद लेने लगे, अकेले घूमे, दोस्त बनाए या अपने विचार स्पष्ट रूप से रखे, तो उसे "बहुत आधुनिक" या "संस्कृति से दूर" कह दिया जाता है। यही नैतिक निगरानी लड़कियों के आत्मविश्वास और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है।

मानसिक स्वास्थ्य– एक अनदेखी चुनौती

अकेलापन, प्रदर्शन का दबाव, आर्थिक तनाव, परिवार की अपेक्षाएँ और लगातार खुद को साबित करने की कोशिश– यह सब मिलकर मानसिक थकान पैदा करते हैं। कई लड़कियाँ चिंता, अवसाद और आत्म–संदेह से गुजरती हैं, लेकिन मान. सिक स्वास्थ्य पर खुलकर बातचीत अब भी सीमित है। उन्हें अक्सर "मजबूत बनो" कहा जाता है, लेकिन यह कम पूछा जाता है कि

वे वास्तव में कैसा महसूस कर रही हैं।

केवल लड़कियों को बदलना समाधान नहीं

इस पूरे द्वंद्व का समाधान केवल लड़कियों को "सावधान" या "संस्कारी" बनने की सलाह देना नहीं है। जरूरत समाज और व्यवस्था के बदलने की है। परिवारों को नियंत्रण के बजाय भरोसे और संवाद का वातावरण बनाना होगा। शहरों को महिलाओं के लिए अधिक सुरक्षित और संवेदनशील बनाना होगा। कार्यस्थलों और शिक्षण संस्थानों में लैंगिक समानता और शिकायत निवारण व्यवस्था मजबूत करनी होगी।

लड़कियां बाहर निकलना चाहती हैं, दुनिया देखना चाहती हैं, लेकिन परिवार उन्हें इसकी इजाजत नहीं देता है। शादी के पहले परिवार उन्हें अकेली लड़की होने का भय दिखाता है तो शादी के बाद मायके और ससुराल की इज्जत बनाए रखने का बोझ थोप कर उन्हें घर में कैद कर देता है। दुखद तो यह है कि आज धर्म और संस्कृति के नाम पर पति–पत्नी, लड़कियों को भी बहलाया जा रहा है। शादी के पहले अच्छी–खासी नौकरी कर रही लड़कियां शादी के बाद अपनी नौकरी स्वेच्छा से छोड़कर पति को परमेश्वर मानने की सोच को सही ठहराने लगी हैं और घरेलू हिंसा को नए रूप में स्वीकार करने लगी हैं। बाजार में औरतों को केवल देह की कीमत समझाई जा रही है, दिमाग की नहीं, और यह स्थिति घातक होती जा रही है। बाजार, मीडिया, सत्ता, समाज, धर्म और संस्कृति सभी मिलकर युवतियों की नकारात्मक छवि प्रस्तुत कर रहे हैं। महिला आंदोलनों के इतिहास से परे महिला अधिकारों को लेकर एक ऐसा माहौल तैयार किया जा रहा है जो एक बार फिर से लड़कियों को या तो घर के अंदर धकेल देगा या जो बाहर होंगी उन्हें हर कदम पर अपने स्त्री शरीर होने का मूल्य चुकाना होगा। लड़कियों की स्वतंत्रता को "खतरा" नहीं बल्कि उनके अधिकार के रूप में स्वीकार करना होगा।

बदलते परिवेश में एक गंभीर चिंता यह भी है कि कई युवाओं को धर्म, संप्रदाय और जाति के नाम पर भटकाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। सामाजिक और राजनीतिक ताकतें अक्सर युवाओं की ऊर्जा और असंतोष का इस्तेमाल भावनात्मक नारों और पहचान की राजनीति के जरिए करती हैं। इसके परिणामस्वरूप कई लड़कियां शिक्षा, कौशल और रोजगार जैसे मूलभूत सवालों से दूर होती चली जाती हैं। उनकी ऊर्जा, जो समाज निर्माण और अपने भविष्य को बेहतर बनाने में लग सकती थी, वह अनावश्यक विवादों और विभाजनकारी मुद्दों में उलझ जाती है। इसलिए आवश्यक है कि युवा इन प्रवृत्तियों को समझें और अपने जीवन के केंद्र में शिक्षा, ज्ञान, वैज्ञानिक सोच और रोजगार के अवसरों को रखें। जब युवा अपनी चेतना को इन मूल सवालों से जोड़ते हैं, तभी वे अपने जीवन को मजबूत आधार दे पाते हैं और समाज के सकारात्मक परिवर्तन में भी सार्थक भूमिका

निभा सकती हैं।

पहले की तुलना में आज बहुत अंतर आया है, खासकर बदलाव के क्षेत्र में। हम देखते हैं कि बच्चे डिजिटल दुनिया को स्वस्थ तरीके से सीख रहे हैं, वे स्वस्थ परिवर्तन के वाहक बन रहे हैं। उनकी मदद से समुदायों में बदलाव को तेजी से लाया जा सकता है। सामाजिक सरोकारों के मुद्दों पर दिखाने के लिए आज इंटरनेट पर अच्छी सामग्री उपलब्ध है, जिसका फायदा बच्चे भी उठा रहे हैं और अपने माता–पिता व समाज को जागरूक कर रहे हैं। उनके बीच में ही कुछ ऐसे युवा निकलते हैं जो इन समस्याओं के प्रति संवेदनशील होते हैं। छोटे शहरों से बड़े शहरों तक आने वाली लड़कियाँ केवल अपना भविष्य बनाने नहीं निकलतीं, वे समाज की पुरानी सीमाओं को भी चुनौती देती हैं। वे हर दिन स्वतंत्रता और नियंत्रण के बीच संतुलन बनाने की कोशिश करती हैं। उनकी यात्रा संघर्षपूर्ण जरूर है, लेकिन यही यात्रा एक अधिक समतामूलक, संवेदनशील और लोकतांत्रिक समाज की संभावना भी पैदा करती है। जरूरत इस बात की है कि हम लड़कियों को नियंत्रित करने के बजाय उन्हें सुरक्षित, सम्मानजनक और स्वतंत्र वातावरण देने की दिशा में काम करें।

लेकिन जब इन्हें सकारात्मक नेतृत्व और मार्गदर्शन नहीं मिलता, इनका गलत इस्तेमाल होने लगता है या फिर परिवार और रोजमर्रा के जीवन में बाजार इन्हें चुनौतियां देता है, सफलता के मायने जब भौतिक सुख मात्र से जोड़ दिए जाते हैं तो फिर एक टूटा हुआ और आक्रोशित युवा तैयार होने लगता है। हम अपने भविष्य की शानदार पीढ़ी और नेतृत्व को खो देते हैं। आज हमें इस सच्चाई और चुनौती को स्वीकार करना होगा और अपनी नई पीढ़ी के लिए सही पथ–प्रदर्शक की भूमिका परिवार समाज और राज्य (स्टेट) को निभानी ही होगी।

अपना घर छोड़कर दूसरे शहरों में पढ़ाई की कश्मकश

छोटे शहर, बड़ी उम्मीदें

भारत में, शैक्षिक प्रवास कुछ समय से चल रहा है और हाल के सालों में इसमें तेजी आई है। आज के वैश्विक समय में हजारों विद्यार्थी पढ़ाई के लिए अपने घरों से दूर दूसरे शहरों या देशों में जाते हैं।

गांवों से छोटे शहरों तक, छोटे शहरों से महानगरों तक और महानगरों से विदेशों तक लाखों युवा बेहतर भविष्य की तलाश में अपना घर, परिवार और परिचित माहौल छोड़ देते हैं। रिसर्चगेट में प्रकाशित एक अध्ययन में साल 1991 से 2021 तक भारत में शैक्षिक प्रवासन के बदलावों को समझने की कोशिश की गई। इसमें बताया गया है कि कैसे विद्यार्थी पढ़ाई के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं और इसमें समय के साथ क्या बदलाव आए हैं। देश में शैक्षिक प्रवासन साल 2011 के 5. 4 मिलियन से बढ़कर 2021 में लगभग 7.7 मिलियन दर्ज किया गया।

अध्ययन के अनुसार, अधिकांश विद्यार्थी छोटी दूरी पर ही प्रवास करते हैं। साल 2021 में करीब 89.3 फीसद विद्यार्थी अपने ही जिले या पास के जिले में पढ़ाई के लिए गए। वहीं साल 2011 में कुल विद्यार्थी आबादी में शैक्षिक प्रवासन 3.63 फीसद था, जो 2021 में घटकर 2.69 फीसद रह गया। उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में शैक्षिक प्रवासन दर कम है। लेकिन, शिक्षा के लिए प्रवासन का सफर

सिर्फ किताबों या डिग्री तक सीमित नहीं है। यह एक गहरा अनुभव होता है, जिसमें शिक्षा व्यवस्था की चुनौतियां और मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी मुश्किलें शामिल होती हैं। घर से दूर रहना एक तरफ स्वतंत्रता देता है, तो दूसरी तरफ अकेलापन, तनाव और नई परिस्थितियों में ढलने की जिम्मेदारी भी लाता है। विद्यार्थियों को नई भाषा, नई संस्कृति, नए खाने और नए सामाजिक ढांचे के साथ तालमेल बैठाना पड़ता है।

हालांकि 2011 के जनगणना के अनुसार, भारत में 5.5 मिलियन से अधिक लोगों का शिक्षा के लिए प्रवास दर्ज किया गया, जो कुल प्रवासियों का लगभग 1.2 फीसद था। लेकिन, अब तक अधिकतर अध्ययन जनगणना 2011 और एनएसएस 64वें दौर के आंकड़ों पर आधारित रहे हैं। शोध बताते हैं कि शैक्षिक प्रवासन पर शोध तो हुआ है, पर साल 2011 के बाद के नए और व्यापक आंकड़ों पर आधारित अध्ययन अभी बहुत कम हैं। इसलिए, ये जानना जरूरी है कि घर से दूर रह रहे विद्यार्थी किस तरह की मानसिक या भावनात्मक समस्याओं का सामना कर रहे हैं। प्रवासी विद्यार्थी अक्सर 16–18 साल की उम्र में घर छोड़कर बड़े शहरों में आते हैं, जहां वे छोटे कस्बों और गांवों की परिचित दुनिया से एकदम अलग भाषा, संस्कृति और जीवनशैली का सामना करते हैं। शुरुआत में यह बदलाव रोमांचक लगता है, लेकिन समय के साथ चुनौतियां बढ़ने लगती हैं। लड़कियों के लिए सुरक्षा की चिंता हमेशा साथ रहती है।

आर्थिक चुनौतियां और मानसिक स्वास्थ्य

आर्थिक तनाव इन चुनौतियों को और भी मुश्किल बना देता है। देश में बढ़ती महंगाई, शिक्षा की ऊंची लागत और सीमित आय के कारण परिवारों पर भारी दबाव रहता है। यह तनाव विद्यार्थियों तक भी पहुंचता है। उन्हें फीस, किराया, पीजी का खर्च, खाना और आना–जाना सब कुछ संभालना पड़ता है। उत्तर प्रदेश की खदीजा ताहेरा जो अभी जामिया मिलिया इस्लामिया से मास्टर्स कर रही हैं, कहती हैं, ''मैं एक छोटे से गाँव से आती हूं। माँ की तबीयत खराब होने के बावजूद सबने मुझे पढ़ने के लिए बाहर भेजा। आर्थिक तौर पर हॉस्टल की फीस भी जुटा पाना मुश्किल था फिर भी इसका इंतजाम घरवालों ने किया। लेकिन हॉस्टल में बेहतर सुविधाएं और अच्छे खाने के लिए प्रोटेस्ट करने की वजह से बाहर निकाल दिया गया। ऐसे में खर्च और अधिक बढ़ गया। इन दिनों लगा जैसे और मुश्किल हो रहा है। फिर भी पिताजी ने हर कोशिश की कि मैं पढ़ाई जारी रखूं। एक लड़की के तौर पर बाहर रहना मेरे और घरवालों दोनों के लिए चिंता का कारण है। पढ़ाई, जीवन और सफलता तीनों की जो लड़ाई बराबर बनी रहती है, उससे जूझना आसान नहीं है। साथ ही आर्थिक समस्या तो बराबर बनी रहती है। पी.जी का खर्च, खाने का खर्च और कैंपस आने–जाने का किराया ये सब मैनेज करना मुश्किल है।''

ग्रामीण क्षेत्रों में साल 2008 में एक विद्यार्थी पर सालाना खर्च 5,856 रुपये था, जो साल 2018 में बढ़कर 12,345 रुपये हो गया। शहरी क्षेत्रों में यह खर्च 12,000 रुपये से बढ़कर 28,000 रुपये तक पहुंच गया। ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन के 2020–21 की रिपोर्ट के मुताबिक निजी संस्थानों में इंजीनियरिंग कोर्स की ट्यूशन फीस पिछले दस सालों में 50 प्रतिशत से भी ज्यादा बढ़ी है।

शिक्षा को आगे बढ़ने का रास्ता माना जाता है, लेकिन इसकी बढ़ती कीमत परिवारों के लिए तनाव का कारण बन रही है। आज शिक्षा का आर्थिक दबाव निम्न मध्यम वर्ग को प्रभावित कर रहा है। न्यू इंडियन एक्स्प्रेस की एक रिपोर्ट बताती है कि साल 2014 से 2018 के बीच भारत में प्राथमिक शिक्षा की लागत 30.7 फीसद बढ़ गई। इसी दौरान ग्रेजुएट कोर्स की फीस में 5.8 प्रतिशत और पोस्ट–ग्रेजुएट कोर्स की फीस में 13.19 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय की 2020 की रिपोर्ट के अनुसार, पिछले दस सालों में शिक्षा पर होने वाला औसत खर्च लगभग दोगुना हो गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में साल 2008 में एक विद्यार्थी पर सालाना खर्च 5,856 रुपये था, जो साल 2018 में बढ़कर 12,345 रुपये हो गया। शहरी क्षेत्रों में यह खर्च 12,000 रुपये से बढ़कर 28,000 रुपये तक पहुंच गया। ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन के 2020–21 की रिपोर्ट मुताबिक, निजी संस्थानों में इंजीनियरिंग कोर्स की ट्यूशन फीस पिछले दस सालों में 50 प्रतिशत से भी ज्यादा बढ़ी है। रिपोर्ट बताती है कि शिक्षा का खर्च महामारी के दौरान अप्रैल 2021 में कुछ समय के लिए 0.63 प्रतिशत तक कम हो गया था। लेकिन एक साल बाद यह फिर बढ़कर 4.12 प्रतिशत हो गई। साल 2024 की रिपोर्ट अनुसार, यह औसतन 11 से 12 प्रतिशत के आसपास बनी हुई है।

डिजिटल दुनिया और मानसिक स्वास्थ्य

आज की दुनिया में तकनीक, सोशल मीडिया और डिजिटल कनेक्टिविटी बहुत बढ़ गई है, फिर भी लोग पहले से ज्यादा अकेलापन महसूस कर रहे हैं। एकाकीपन और सामाजिक अलगाव अब सिर्फ एक भावना नहीं, बल्कि एक गंभीर सामाजिक और मानसिक स्वास्थ्य का मुद्दा बन गया है। दोस्ती, सपोर्ट सिस्टम और अपनापन न होने से यह समस्या और बढ़ जाती है। यह चुनौती खासकर उन प्रवासी विद्यार्थियों के लिए ज्यादा गहरी होती है जो अपने घर, गांव या राज्य को छोड़कर पढ़ाई के लिए दूसरे शहर जाते हैं। परिवार से दूर एक नए माहौल में रहना, जहां अपना कोई नहीं होता, उन्हें असहज कर सकता है। इस कारण वे दोस्त, सपोर्ट सिस्टम और बिलॉगिंग की कमी महसूस करते हैं।

उड़ीसा की रखसंदा जो मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी में मास्टर्स कर रही हैं, कहती हैं, ''मैंने ग्रेजुएशन

उड़ीसा में किया था। पढ़ाई में कोई खास फर्क नहीं है, बस राज्य और केंद्रीय विश्वविद्यालय का फर्क है। लेकिन मानसिक स्वास्थ्य की बात अलग है। मैं पहली बार घर से इतनी दूर पढ़ने आई हूं। परिवार ने मुझ पर भरोसा किया है, इसलिए अच्छा करने का दबाव रहता है। जब अकेलापन महसूस होता है, तो लगता है यहां मुझे सपोर्ट करने वाला कोई नहीं है। इसका असर मानसिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है।'' साफ तौर पर एकाकीपन और सामाजिक अलगाव प्रवासी विद्यार्थियों के लिए एक बड़ी और वास्तविक समस्या है। यह केवल भावनात्मक बोझ नहीं, बल्कि एक व्यापक मानसिक स्वास्थ्य संकट का हिस्सा है। इसलिए, शैक्षणिक संस्थानों को इस मुद्दे को गंभीरता से लेना चाहिए और विद्यार्थियों के लिए सुलभ मानसिक स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराना चाहिए, ताकि उन्हें मानसिक तौर पर कमजोर और असुरक्षित महसूस न हो।

भाषा, संस्कृति और भेदभाव की दीवारें और बढ़ता मानसिक तनाव

आज के समय में लोग शिक्षा, नौकरी, कारोबार और सुरक्षा के कारण लगातार एक जगह से दूसरी जगह जा रहे हैं। लेकिन नया शहर, नई भाषा और अलग संस्कृति कई बार अपनापन महसूस नहीं होने देती। जब आसपास का माहौल अनजान हो, तो घुलना–मिलना कठिन हो जाता है और यही दूरी धीरे–धीरे मानसिक तनाव में बदलने लगती है। केरल के रहने वाले अभिनंत, जो हैदराबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी में मास्टर्स कर रहे हैं, बताते हैं, ''मलयालम और अकादमिक अंग्रेजी से अचानक तेलुगु और हिंदी के माहौल में आना आसान नहीं था। निर्देश समझने और समूह में बात करने में दिक्कत आती थी। खाने में भी अपने राज्य का स्वाद ढूँढ़ना मुश्किल था। इन सब कारणों से मुझे सामाजिक बातचीत में हिचक होने लगी और शुरुआत में नए लोगों से दोस्ती करना कठिन था।'' देश में शैक्षिक प्रवासन साल 2011 के 5.4 मिलियन से बढ़कर 2021 में लगभग 7.7 मिलियन दर्ज किया गया। अध्ययन के अनुसार, अधिकांश विद्यार्थी छोटी दूरी पर ही प्रवास करते हैं। साल 2021 में करीब 89.3 फीसद विद्यार्थी अपने ही जिले या पास के जिले में पढ़ाई के लिए गए। वहीं बिहार के सलमान, जो हैदराबाद विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में मास्टर्स कर रहे हैं, कहते हैं, ''मुझे हिंदी साहित्य बहुत पसंद है, इसलिए मैं इंजीनियरिंग छोड़कर हिंदी पढ़ने आया। लेकिन कई लोग यह सुनकर हैरान होते हैं कि एक मुसलमान हिंदी क्यों पढ़ रहा है। वे मानते हैं कि मुसलमानों को उर्दू या अरबी ही पढ़नी चाहिए। यह सोच गलत है, क्योंकि भाषा का धर्म से कोई संबंध नहीं होता। लेकिन ऐसी टिप्पणियां मानसिक तनाव का कारण बनती है।'' (साभार : m.dailyhunt.in)

फोटो: www.thehindu.com

कम क्यों हैं इंतजाम

सबके लिए संभव नहीं दूर जाकर पढ़ाई करना

कॉलेज और साधन के अभाव में पढ़ाई छोड़ने को विवश हो रही हैं लड़कियां

देश में बेटियों को पढ़ाने को लेकर शहरों से लेकर गांवों तक राय बदल रही है। भारत के 78 प्रतिशत ग्रामीण माता–पिता चाहते हैं कि उनकी बेटी स्नातक या उससे आगे की पढ़ाई करे। एक सर्वेक्षण में यह दावा किया गया है। देश के 20 राज्यों के 6,229 परिवारों पर किए गए सर्वेक्षण के आधार पर तैयार 'ग्रामीण भारत में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति–2023' नामक रिपोर्ट के मुताबिक बच्चों के लैंगिक वर्गीकरण का विश्लेषण करने पर संकेत मिला कि अभिभावकों का अपने बच्चों को तकनीकी डिग्री, स्नातक और परास्नातक डिग्री सहित उच्च शिक्षा दिलाने को लेकर समान झुकाव है, फिर चाहे उनकी संतान लड़की हो या लड़का।

अधिक लड़कियां छोड़ रही पढ़ाई

सर्वे में 82 प्रतिशत अभिभावकों ने कहा कि वे लड़के को स्नातक या उससे आगे की पढ़ाई कराना चाहते हैं जबकि लड़कियों के बारे में यह राय रखने वाले 78 प्रतिशत रहे। सर्वेक्षण में खुलासा हुआ कि बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों में एक–चौथाई लड़के हैं जो प्राथमिक कक्षाओं में ही अपनी पढ़ाई छोड़ देते हैं। रिपोर्ट के मुताबिक, तुलनात्मक रूप से पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों में लड़कों के मुकाबले लड़कियों की संख्या अधिक है और यह 35 प्रतिशत है। प्राथमिक शिक्षा पूरी कर पढ़ाई छोड़ने वाले लड़कों और लड़कियों की दर अधिक (लड़कों में यह 75 प्रतिशत और लड़कियों में यह 65 प्रतिशत) है।

आसपास हाई स्कूल नहीं होना भी कारण

सर्वेक्षण के मुताबिक, गांव या आसपास उच्च कक्षा के स्कूलों का नहीं होना बच्चों के पढ़ाई छोड़ने की उच्च दर का एक कारण हो सकता है क्योंकि संभव है वे प्राथमिक कक्षा की पढ़ाई पूरी कर आगे पढ़ने के लिए दूर नहीं जा सकते हों। इस अध्ययन को 6 से 16 साल के ग्रामीण बच्चों पर केंद्रित किया गया। अध्ययन इनिशिएटिव ट्रांसफॉर्मिंग रुरल इंडिया फाउंडेशन (टीआरआईएफ) की विकास आसूचना इकाई (डीआईयू) और संबोधी प्राइवेट ने भारत के ग्रामीण विकास के हितधारकों को सही विश्लेषण और स्थिति से अवगत कराने के दृष्टिकोण के साथ आंकड़े एकत्र करने के लिए किया।

बच्चों का कौन कर रहा मार्गदर्शन?

सर्वेक्षण के मुताबिक 62.5 बच्चों की मां पढ़ाई के मामले में उनका मार्गदर्शन करती हैं जबकि 49 प्रतिशत बच्चों के पिता यह जिम्मेदारी निभाते हैं। अध्ययन के मुताबिक, यह बच्चों के घर में शैक्षणिक कार्यों में

कम क्यों हैं इंतजाम

माता–पिता के मार्गदर्शन और सहयोग को इंगित करता है। इसके अलावा 38 प्रतिशत अभिभावकों ने बच्चों के लिए निजी ट्यूटर रखे हैं। यह भी देखा गया कि ग्रामीण भारत में अकसर बच्चों के मां–बाप के अलावा दूसरे लोग भी मर्गदर्शन करते हैं। उदाहरण के लिए, 25.6 प्रतिशत बच्चे अपने बड़े भाई बहन के मार्गदर्शन में पढ़ाई करते हैं। 3.8 प्रतिशत बच्चों का मार्गदर्शन आंगनवाड़ी कार्यकर्ता करती है जबकि 7.6 प्रतिशत को सामुदायिक शिक्षक प्रेरित करते हैं।

(साभारः navbharattimes.indiatimes.com)

न कॉलेज है, न कोई व्यवस्था बेटियां फेल हुईं तो पढ़ाई बंद

डॉ. साधना सक्सेना

वर्ष 2008–09 के दौरान डॉ. साधना सक्सेना ने एक टीम के साथ यूनीसेफ, भोपाल के लिए मध्यप्रदेश में लड़कियों की शिक्षा की परिस्थिति पर एक राज्य स्तरीय अध्ययन किया था। इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य लड़कियों की शिक्षा में बाधक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को समझना था।

जेंडर असमानता को समझने के लिए नामांकन दर या कितनी लड़कियां किस कक्षा तक पहुंची या नहीं पहुंची मात्र यह जानना पर्याप्त नहीं है। असमानता की जड़ें समाज व्यवस्था और सोच में हैं। सवाल यह उठता है कि अगर यह लक्ष्य हासिल नहीं हुआ है तो क्यों? या यदि हासिल हुआ भी तो क्या उनके जीवन में समानता आई? एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लड़कियों का समूह एक समान हैसियत वाला समूह नहीं होता है। लड़कियों के समूह में ही कई श्रेणियां हैं, मसलन, पिछड़ी जातियों, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक परिवारों की लड़कियां इत्यादि। इन सब श्रेणियों के बीच भी किस–किस तरह की असमानताएं और द्वन्द्व हैं और इनके लिए शिक्षा के लक्ष्यों को हासिल करने में कौन–कौन सी विशिष्ट दिक्कतें सामने आती हैं, यह समझना भी जरूरी है।

असल में इस अध्ययन के दो पहलू हैं। एक पहलू तो यह है कि शिक्षा को लेकर जो राज्य या राष्ट्रस्तरीय आंकड़े एकत्र किए जाते हैं; जो सेकेंड्री आंकड़े कहलाते हैं और मुख्यतः संख्यात्मक होते हैं; उससे उभरने वाला राज्यस्तरीय चित्र क्या है? दूसरा पहलू है गांव और शहरी स्तर पर, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से जमीनी गुणात्मक जानकारी इकट्ठी करके यह जानना कि वास्तविकता है क्या? संख्यात्मक जानकारी की कितनी सीमाएं हैं और गुणात्मक जानकारी क्यों जरूरी है। जैसे, राष्ट्र या राज्य स्तर पर जो आंकड़े इकट्ठे किए जाते हैं उनमें एक सवाल यह पूछा जाता है कि शाला में बाउंड्री वॉल है या नहीं है? यहां पहला प्रश्न यह उठता है कि बाउंड्री वॉल को इतना महत्त्व क्यों दें और दूसरा, कि वह है या नहीं? मान लीजिए कि संख्यात्मक जानकारी से पता चला कि राज्य के 40% स्कूलों में बाउंड्री वॉल है। परंतु यदि हम गहराई से सोचें तो इससे कुछ खास पता नहीं चलता है। यह इसलिए क्योंकि कभी बाउंड्री वॉल मात्र कुछ झाड़ियां होती है या सिर्फ कुछ तार लगाकर होती है तो कभी यह अच्छी पक्की दीवार होती है।

स्कूल जाने के साधन

सरकारी नीति के अनुसार, 5 कि.मी. के दायरे में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय होना जरूरी है। जिन गांवों में हमने फील्ड वर्क किया उनमें हायर सेकेंड्री स्कूल 5 से 50 किमी. दूरी पर हैं। परिवहन की सुविधा का कोई सवाल ही नहीं है, कल्पना भी नहीं कर सकते। स्कूल का दूर होना और परिवहन की सुविधा का न होना किस प्रकार से

कम क्यों हैं इंतजाम

शिक्षा प्रभावित करता है इसके बीसियों उदाहरण इस अध्ययन के दौरान सामने आए हैं। माया उइके होशंगाबाद जिले में पिपरिया तहसील के डापका गांव में रहती है। उसने 2007 में आठवीं कक्षा पास की थी। वह आगे पढ़ना चाहती थी। सबसे पास उच्चतर माध्यमिक शाला, जहां वह जा सकती थी, वह डापका से 16 कि. मी. दूर है। उसके पिता से सब लोगों ने कहा कि आप पढ़ाई की बात छोड़ो, इसकी शादी कर दो। किसी कारण से उसके पिता, जो खुद एक खेतिहर मजदूर हैं, उनको लगा कि अगर लड़की की इच्छा पढ़ने की है तो उसे पढ़ाना चाहिए। उनके कोई ऐसे रिश्तेदार नहीं थे जिनके पास लड़की को पिपरिया में रख देते। न ही यह संभव था कि लड़की को पिपरिया में किराये का कमरा लेकर रख देते। 6 लड़कियां, जो इसी स्कूल में आठवीं में पास हुई थीं, उनमें से कोई भी आगे पढ़ने की स्थिति में नहीं थीं। उनके घर पर मना कर दिया गया था। माया पढ़ना चाहती थी और उसके पिता मान गए थे। इसी बीच मध्यप्रदेश सरकार की एक योजना लागू हुई। इसके अनुसार, ''उन लड़कियों को, जिनके गांव में उच्चतर माध्यमिक स्कूल नहीं हैं और वे अगर आठवीं पास करके आगे पढ़ना चाहती हैं और पास के गांव का स्कूल 5 किमी. से ज्यादा दूर है तो स्कूल जाने के लिए उनको साइकिल दी जाएगी।'' इससे माया को बहुत जोश आ गया और माया ने भी साइकिल ले ली। उसने अपनी एक मित्र, रानी को भी पिपरिया के स्कूल जाने के लिए मना लिया। इस प्रकार रानी और माया ने तय किया कि वे आगे पढ़ेंगी। तय हुआ कि रानी का भाई उनको गांव के रास्ते से 8 किमी. दूर मेन रोड तक रोज छोड़कर आया करेगा और रोज वापस लेकर आएगा।

माया कहती है कि जिस दिन रानी का भाई नहीं आ पाता था उस दिन उनकी छुट्टी हो जाती थी क्योंकि वे स्कूल जा नहीं पाती थीं। इस कारण से उनकी उपस्थिति बहुत कम हो गई थी। दूसरी बात थी कि 32 कि.मी. रोज साइकिल चलाना बहुत थकाने वाला था। रोज सुबह घर का सारा काम करके वे स्कूल जाती थीं और स्कूल से वापस आकर घर का सारा काम करती थीं। लड़कियों ने लिस्ट बनाई कि वे क्या–क्या काम करके स्कूल जाती हैं और क्या–क्या काम वे घर वापस आकर करती हैं। एक तो वे घर वापस आकर पढ़ाई नहीं कर पाती थीं; दूसरा, आधे समय स्कूल ही नहीं जा पातीं थीं। दोनों नौवीं में फेल हो गईं और उसके बाद उनकी पढ़ाई भी खत्म हो गई। पढ़ाई क्यों खत्म हो गई?

यह लगभग हर जगह हमको बताया गया कि लड़की तब तक पढ़ सकती है जब तक वह फेल नहीं होती। यह केवल गांवों और कस्बे का नियम नहीं है। दिल्ली की बस्तियों के बारे में भी यही पता चला। ये एक नियम जैसा है कि लड़की तब तक पढ़ सकती है जब तक वह फेल नहीं होती। लड़की की दृढ़ता, उससे भी महत्त्वपूर्ण उसके पिता की दृढ़ता भी काफी नहीं है क्योंकि उसके साथ एक और चीज जुड़ी है फेल होने के बाद आगे न पढ़ाए जाने का अलिखित नियम और शादी का दबाव।

छात्रावास स्वतंत्रता की एक किरण

लड़कियों के छात्रावास अपने आप में महत्त्वपूर्ण संस्थाएं हैं। लड़कियों के लिए छात्रावास जरूरी हैं। आज की परिस्थिति में जब हाई स्कूल दूर हैं, कई बार तो मिडिल स्कूल भी दूर हैं इसलिए छात्रावासों के प्रावधान की योजना महत्त्वपूर्ण है। लड़कियों ने हमें बताया कि छात्रावास इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इससे वे घर की चिक–चिक से दूर हो पाती हैं। घर की चिंता किए बिना वे अपनी सहेलियों के साथ रह सकती हैं, खेल सकती हैं, पढ़ सकती हैं, मतलब यह लड़कियों पर कितना हावी है कि घर में हैं तो उन्हें लगातार काम करना है। इसलिए जो चार घंटे वे स्कूल में हैं, जहां वे अपने दोस्तों के साथ बिना रोक–टोक के बातें कर सकती हैं, खेल सकती हैं, कूद सकती हैं, उनके लिए वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आमतौर पर इसलिए हॉस्टल बहुत अच्छे लगते हैं क्योंकि हॉस्टल में आने से, कम–से–कम कुछ महीनों के लिए, घर से नाता टूट जाता है। आमतौर पर लड़कियां हॉस्टल में आकर बहुत खुश होती हैं। पर दिक्कत की बात यह है कि हॉस्टलों के हालात इतने खराब हैं कि जैसे लड़कियों को एक जेलखाने से उठाकर दूसरे जेलखाने में डाल दिया गया है।

बुनियादी सुविधाओं के नितांत अभाव में जैसे– बिना पानी या एक हैंडपंप वाला एक बाथरूम, बिना बाउंड्री वॉल और समुचित व्यवस्था वाला भवन, इत्यादि के कारण हॉस्टलों में रहना काफी कठिन काम है। आमतौर पर वार्डन के लिए भी रहने, सोने की कोई अलग व्यवस्था नहीं रहती। खाने की व्यवस्था भी ढंग से नहीं है। इस तरीके से जो हॉस्टल चलते हैं उनकी दशा अत्यंत शोचनीय है। आश्चर्य यह है कि यह स्थिति केवल दलित और आदिवासी छात्रावासों की ही नहीं बल्कि कस्तूरबा गांधी विद्यालय के हॉस्टलों की भी है। इनमें भी 100 लड़कियों को रखने का कोई सुरक्षित माहौल नहीं है, पढ़ने का तो माहौल ही भूल जाइए। कस्तूरबा गांधी विद्यालय केंद्र सरकार की इस समय एक बेहद चर्चित स्कीम है जिसको लेकर बहुत बातें हो रही हैं। इनका बजट राज्य के अनुसूचित जाति और जनजाति छात्रावासों की तुलना में बहुत बेहतर है, ये ज्यादा सुविधाएं पाते हैं। परंतु हालत कोई बहुत ज्यादा बेहतर नहीं हैं। एक कमरा जो थोड़ा–सा बड़ा होगा, जिसमें लड़कियां रह रही हैं, कई बार सांप–बिच्छुओं के डर के साथ रह रही हैं, जमीन पर सो रही हैं क्योंकि या तो पलंग नहीं हैं या तो पलंग रखने की जगह नहीं है, पानी नहीं है, इत्यादि, इत्यादि। कुल मिलाकर बहुत ही दयनीय स्थिति है इन हॉस्टलों की।

(डॉ. साधना सक्सेना दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में प्रोफेसर रही हैं। साभारः anu-vadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in)

''बेबस नहीं हैं छोटे शहर की लड़कियां''

रचिता शर्मा

एक छोटे कस्बे में पली–बढ़ी और 17 साल की उम्र में दिल्ली आकर, मुझे यह जानकर हैरानी हुई कि महानगर के अधिकांश लोगों के मन में 'छोटे कस्बे की लड़कियों' को लेकर क्या धारणाएं और रूढ़िवादिताएं हैं। धैर्यपूर्वक इस विरोधाभास को समझने के बाद, मुझे एहसास हुआ कि शहरों में रहने वाले अधिकांश लोगों के मन में छोटे कस्बों की जो छवि है, वह सीधे तौर पर उन टीवी धारावाहिकों का प्रतिबिंब है जिन्हें वे लगातार देखते रहते हैं।

नहीं, युवतियाँ बेबस नहीं हैं। न ही मेरी जिंदगी 'अगले जनम मोहे बिटिया कीजो' के मुख्य किरदारों जैसी है। हम जींस पहनते हैं और अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ते हैं। हममें से कई लड़कियाँ पारंपरिक शिक्षा में पढ़ाए जाने वाले विषयों से परे, इतिहास, फैशन, राजनीति और विश्व मामलों सहित विविध विषयों में पारंगत हैं। हाँ, हम गुच्ची और फेरारी जैसे बड़े ब्रांडों के बारे में जानते हैं, भले ही हम इतने व्यावहारिक हों कि उन्हें पहनते न हों। हम भी उबर ऐप पर निर्भर हैं और मोबाइल फोन चलाने में हम भी दूसरों की तरह ही माहिर हैं।

मथुरा, आगरा, पटियाला, सोला. पुर और शिमला जैसे छोटे शहरों और सीमित संसाधनों या इंटरनेट की सुविधा वाले दूरदराज के गांवों में बहुत फर्क है। बड़े शहरों में हमें स्कर्ट पहने देखकर मुस्कुराइए मत। यह मत सोचिए कि हम घुलने–मिलने की कोशिश कर रहे हैं। हम बचपन से ही घर में शॉर्ट्स पहनते आए हैं। हमने लड़कों से मुकाबला किया है

और जीतना जानते हैं। हालांकि, हम सामाजिक बाधाओं की वास्तविकता को स्वीकार करते हैं, जिसमें घर पर हमारे बारे में होने वाले अपरिहार्य निर्णय भी शामिल हैं। छोटे शहर में बात बहुत तेजी से फैलती है। आपकी जिंदगी कभी आपकी नहीं होती। छोटे शहर अक्सर आपस में जुड़े समुदायों से मिलकर बने होते हैं। हर कोई एक–दूसरे को जानता है। एक युवती के रूप में, आप खुद को पूरे शहर में चर्चा का विषय पाती हैं, खासकर तब जब आप सही और गलत की सीमा को पार कर जाती हैं।

छोटे शहरों की अधिकांश महिलाओं का मानना है कि अपने सपनों को पूरा करने या अपनी सच्ची रुचि को साकार करने के लिए उन्हें शहर छोड़ना ही पड़ेगा। हममें से कई लोग स्वीकृति और मानसिक शांति की तलाश में रहते हैं, इसलिए बड़े शहर में बसने के बाद कला या फोटोग्राफी में करियर बनाना आसान हो जाता है। छोटे शहर में, उन करियर सपनों के लिए सीमित गुंजाइश होती है जो आमतौर पर सुरक्षित विकल्पों (चिकित्सा, अध्यापन, कानून, इंजीनियरिंग, प्रबंधन आदि) से अलग होते हैं। जब छोटे शहरों की सीमित अपेक्षाओं से बंधी लड़कियां दुनिया में कदम रखती हैं, तो उन्हें अहसास होता है कि उन्होंने उन अवसरों को खो दिया जो बड़े शहरों में रहने वाली उनकी सहेलियों के लिए आसानी से उपलब्ध थे, जैसे कि विनिमय कार्यक्रम, मॉडल यूएन, फील्ड ट्रिप, खेल, ग्रीष्मकालीन इंटर्नशिप और स्वयंसेवी कार्यक्रम।

विविधता और अवसरों की कमी अक्सर छोटे शहरों की महिलाओं के सामने आने वाली बाधाओं को उजागर करती है। जिस मानसिक अवरोध में वे पली–बढ़ी हैं, वह उनकी रचनात्मकता और आत्मविश्वास को बाधित कर सकता है। परिणामस्वरूप, शहरी महिलाओं की तुलना में हमें नई परिस्थितियों में ढलने और उनसे निपटने में कठिनाई होती है। हमें भोला–भाला होने की रूढ़िबद्ध धारणाओं का सामना करना पड़ता है, जो शायद हममें से कुछ के लिए सही भी हो लेकिन हम सभी इस बात से सहमत नहीं हैं। मथुरा में पली–बढ़ी होने के कारण, मुझे लगातार होने वाले जातिगत भेदभाव से कभी भी सहज महसूस नहीं हुआ। मेरे सहपाठियों के साथ होने वाला जातिवाद मुझे बहुत परेशान करता था और मेरे अस्तित्व को ठेस पहुँचाता था।

(रचिता शर्मा गर्ल पावर टॉक की सीईओ और सह–संस्थापक हैं, जो योग्यता आधारित अवसरों के साथ युवा महिलाओं को सशक्त बनाने का एक मंच है। वह न्यूयॉर्क स्थित ब्लू ओशन ग्लोबल टेक्नोलॉजी की सीएमओ भी हैं।

साभार: https://eshe.in)

संघर्ष

मुश्किलों से गुजरती हैं शहरों में जाकर पढ़ने वाली लड़कियां

कामकाजी महिला छात्रावास योजना के तहत दूसरे शहर में रहकर काम करने वाली महिलाओं को सरकार द्वारा हॉस्टल की सुविधा दी जाती है। इस हॉस्टल में महिलाएं सुरक्षित रहकर अपने काम को आसानी से कर सकती है। योजना के तहत सरकार उन महिलाओं को रहने के लिए हॉस्टल की सुविधा देती है जो काम के चलते अपने शहर से बाहर किसी और शहर में रहती है। यह हॉस्टल सिंगल, तलाकशुदा, कामकाजी या विधवा महिलाओं को दिया जाता है। इसके अलावा शादीशुदा महिला को उसके काम के आधार पर भी आवेदन करने की सुविधा मिलती है। इसके साथ ही वह महिलाएं केवल आवेदन कर सकती है जिनकी सैलरी 50,000 रुपये से कम है।

हाल ही में किए गए पीरियॉडिक लेबर फोर्स सर्वे (पीएलएफएस) के अनुसार, साल 2022–23 में भारत की कुल श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी करीब 37 फीसदी रही, जबकि 2017–18 में यह प्रतिशत 23.3 फीसदी थी। इस बढ़ती भागीदारी के साथ, सरकारी नौकरियों में भी महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ रही है। सरकार ने महिलाओं के लिए फीस में कटौती और परीक्षा केंद्रों को घर से ज्यादा दूर न देने जैसे कदम उठाए हैं। इन प्रयासों का असर यूपीएससी के परिणामों में भी साफ दिखता है। यूपीएससी द्वारा अनुशंसित महिला उम्मीदवारों का प्रतिशत 2018 में 24 फीसदी से बढ़कर 2022 में 34 फीसदी हो गया है। इस प्रकार का चलन अन्य परीक्षाओं में भी देखने को मिला है, लेकिन शहरों में पढ़ने के लिए लड़कियों की चुनौतियां अभी भी है।

शहरों में बेहतर शिक्षा की तलाश में दूर–दराज के इलाकों से लड़कियां अपने सपनों को साकार करने के लिए आ रही हैं, लेकिन, इस सफर में उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक ओर जहां बड़े शहरों में शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध हैं, वहीं दूसरी ओर इन सुविधाओं तक पहुंच बनाना लड़कियों के लिए आसान नहीं है।

दिल्ली के करोल बाग में यूपीएससी की तैयारी कर रही निशा ने बताया, ''पीजी में एक बेड का किराया 10 हजार है और कमरा चार लड़कियों के साथ शेयर करना पड़ता है।'' शहरों में रहने की महंगी व्यवस्था के अलावा भी सुरक्षा की चिंता लड़कियों के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन जाती है। निशा बताती हैं, ''पढ़ने के लिए सुबह 8 बजे लाइब्रेरी के लिए निकल जाती हूं, और रात को 10 बजे सोने के समय कमरे में लौटती हूं।''

दिल्ली के ही संगम विहार में एक पेइंग गेस्ट हाउस के मालिक ने बताया कि एक बेड का किराया 10 हजार रुपये है। वहीं, करोल बाग के एक पीजी मालिक का कहना है कि अगर एक अकेले का कमरा चाहिए, तो किराया 26 से 30 हजार तक है। लड़कियों के लिए शहर में अलग से फ्लैट लेकर रहना भी आसान नहीं होता, क्योंकि सुरक्षा की चिंता हमेशा बनी रहती है। दूरदराज के इलाकों से आने वाली लड़कियों के लिए नेटवर्क की समस्या भी एक बड़ा मुद्दा है। प्रतापगढ़ की अंकिता त्रिपाठी, जो नेट की तैयारी कर रही हैं, बताती हैं कि उन्हें नेटवर्क की समस्या के कारण अपने रिश्तेदारों के घर रहना पड़ता है। गांव में नेटवर्क नहीं आता, इसलिए प्रतापगढ़ जाकर रिश्तेदारों के यहां रहकर पढ़ाई करती है। अंकिता कहती हैं कि नेटवर्क इशू रहता है इसकी वजह से ही तो जाना पड़ता है वरना पढ़ना तो ऑनलाइन में ही था। महिलाओं के लिए शहर में रहना और शिक्षा हासिल करना सिर्फ एक चुनौती ही नहीं, बल्कि उनके सपनों को साकार करने की दिशा में एक संघर्ष भी है। इन कठिनाइयों के बावजूद, लड़कियां अपने घरों से दूर रहकर, महंगे किराए पर छोटे कमरों में रहकर, और सुरक्षा की चिंताओं के बावजूद भी पढ़ाई कर रही हैं। उनके इस संघर्ष की कहानी यह भी बताती है कि अब भी समाज से समर्थन और सुविधाओं की जरूरत है, ताकि वे अपने सपनों को पूरा कर सकें।

(साभार: www.dw.com)

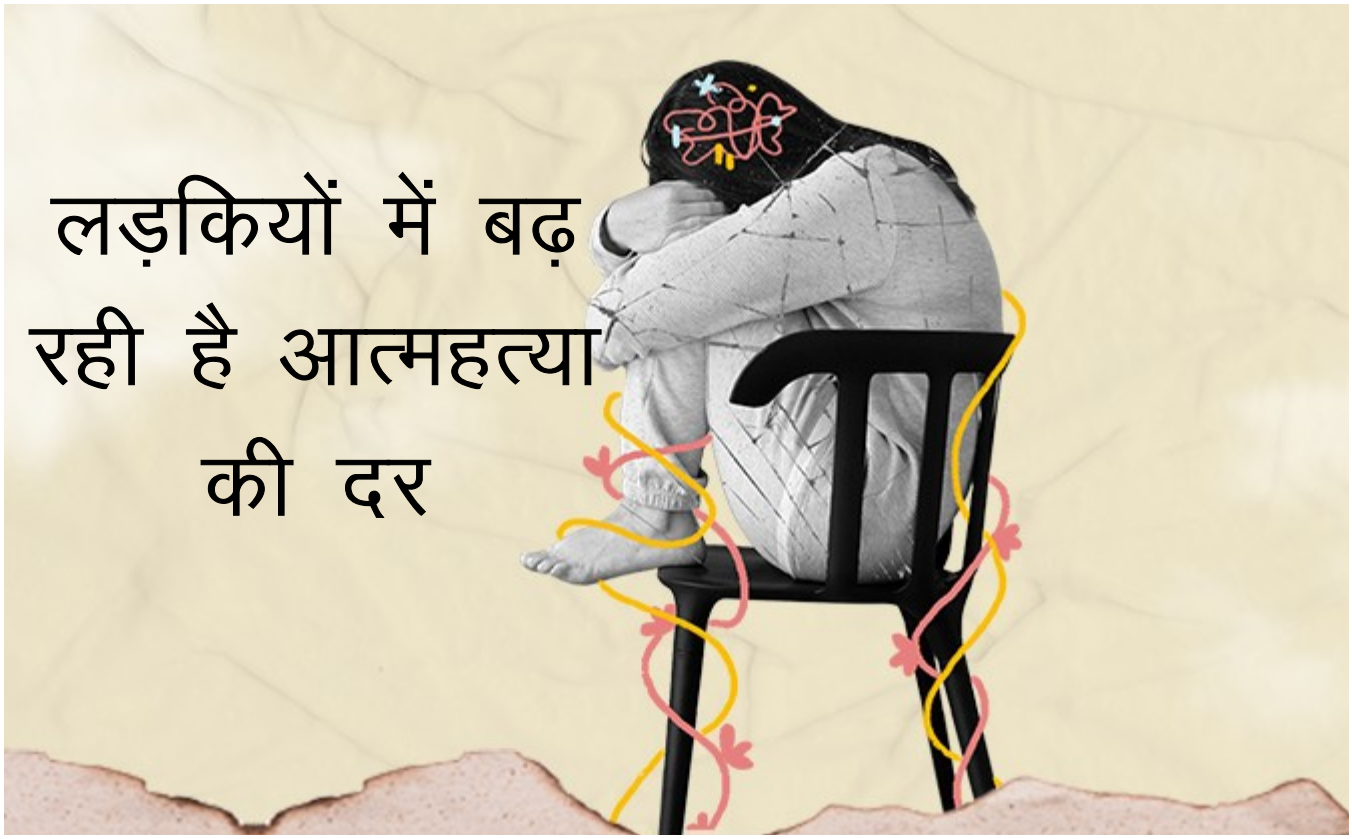

लड़कियों में बढ़ रही है आत्महत्या की दर

–25 जुलाई, 2025 को अहमदाबाद के नवरंगपुरा स्थित स्कूल में 16 वर्ष की कक्षा 10 की छात्रा हंसते हुए क्लास से बाहर निकली। हाथ में चाबी का गुच्छा घुमाते हुए आराम से स्कूल की चौथी मंजिल की गैलरी में जाकर खड़ी हुई और अचानक ही उसने नीचे छलांग लगा दी। इस पूरी घटना का सीसीटीवी फुटेज सोशल मीडिया पर वायरल हुआ।

–26 जुलाई, 2025 को लखनऊ के आशियाना स्थित एक स्कूल के आठवीं कक्षा में पढ़ने वाले 14 वर्षीय छात्र ने आत्महत्या का रास्ता चुन लिया। कारण, उसकी मां ने डांट लगाई थी कि मोबाइल चलाने के बजाय वह पढ़ाई पर ध्यान दे।

ये दो मामले उदाहरण भर हैं। भारत समेत दुनिया के कई हिस्सों में स्कूल जाने वाले बच्चों में आत्महत्या की प्रवृत्ति में बीते कई वर्षों से इजाफा देखा जा रहा है। यह गंभीर चिंता का विषय है। डॉक्टर ईशान्या राज के मुताबिक, अगर अवसाद के शुरुआती संकेतों को समय रहते पहचाना जाए और मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ से मदद ली जाए तो बच्चों को गंभीर मानसिक संकट से बचाया जा सकता है। बच्चों में आत्महत्या के मामलों को लेकर मनोवैज्ञानिक अलग–अलग कारण और प्रवृत्तियों पर ध्यान देने की बात करते हैं। हालांकि, अधिकांश मनोवैज्ञानिक सहमति जताते हैं कि सबसे मुख्य कारण बदलती और आधुनिक होती तकनीक है।

डॉ ईशान्या राज, प्रयागराज के मोतीलाल नेहरू डिविजनल हॉस्पिटल में नैदानिक मनोचिकित्सक हैं। वह बताती हैं कि कोरोना काल के बाद से इंटरनेट ने बच्चों की जिंदगी में अहम जगह बनाई है। इसके चलते जहां एक ओर उनकी जिंदगी में मोबाइल फोन और गैजेट्स की संख्या में इजाफा हुआ है, वहीं दूसरी ओर उनके मानसिक स्तर पर इसका प्रतिकूल प्रभाव भी दिख रहा है। किंग जॉर्ज चिकित्सा विश्व. विद्यालय (केजीएमयू) के बाल मनोचिकित्सक प्रोफेसर डॉ पवन गुप्ता का कहना कि आज बच्चों के पास बहुत कम उम्र में ही इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स तक पहुंच है। घरों में अनलिमिटेड वाई–फाई है और अभिभावकों के पास उन पर निगरानी रखने का समय बेहद कम है। इसका नतीजा यह होता है कि बच्चों के पास मानसिक विकास के लिए न तो समय होता है और न ही शारीरिक अभ्यास में उनकी रुचि रह जाती है। उन्हें अपना हर जवाब बस एक बटन दबाकर मिल जाता है।

डॉ. ईशान्या का कहना है कि माता–पिता, शिक्षकों और बच्चों के बीच जेनेरेशन गैप है, इस वजह से दोनों पीढ़ियां एक–दूसरे को समझने में अक्षम हो रही हैं। इसमें आधुनिक तकनीक की भी भूमिका है। तकनीक का अत्यधिक प्रयोग न केवल बच्चों के मानसिक विकास और स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है, बल्कि माता–पिता को भी उनसे दूर करता जा रहा है।

कॉलेज का समय जीवन में महत्वपूर्ण

चिंतनीय

बदलाव का दौर होता है। कई छात्र पहली बार घर से दूर रहते हैं और उन्हें परिवार और दोस्तों से कम सहयोग मिलता है। बढ़ी हुई स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता के साथ–साथ, छात्रों को कई कारणों से तनाव का भी सामना करना पड़ता है, जैसे शैक्षणिक मांगों में वृद्धि, नए वातावरण में तालमेल बिठाना और एक नया सहयोग तंत्र विक. सित करना। कॉलेज में शराब और अन्य नशीले पदार्थों के सेवन का भी अवसर मिलता है, जिससे मनोदशा संबंधी समस्याएं बढ़ सकती हैं और आत्महत्या का खतरा भी बढ़ सकता है। पहले बच्चे नोट्स बनाते थे, उन्हें याद करते थे, बाहर खेलते थे, लोगों से मिलते–बात करते थे। वे अपने अनुभवों से काफी कुछ सीखते थे, लेकिन अब बच्चे मोबाइल और इंटरनेट पर काफी हद तक निर्भर हैं। इससे उनका सामाजिक कौशल कमजोर हो रहा है। साथ ही, इमोशनल इंटेलिजेंस पर भी असर पड़ रहा है। बच्चों का जल्दबाजी में हर निर्णय लेना, किसी भी बात पर तुरंत ही रिएक्शन देना और किसी बात के बुरा लगने पर उत्तेजित हो जाना आदि ऐसी बातें हैं, जो बच्चों के लिए 'फॉल्स आइडेंटिटी' के तौर पर सामने आता है।

कई छात्र मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं या उपचार के पूर्व इतिहास के साथ कॉलेज में आते हैं। पर्यावरणीय तनाव और मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता मिलकर आत्महत्या का जोखिम बढ़ा सकते हैं। हाल ही में हुए एक राष्ट्रीय सर्वेक्षण में 16% कॉलेज छात्रों ने अवसादग्रस्तता विकार से पीड़ित होने की बात कही, जिनमें से कई को पिछले एक वर्ष के भीतर ही यह विकार हुआ था। आत्महत्या करने वाले 90% से अधिक व्यक्तियों में किसी न किसी प्रकार का मानसिक विकार पाया जाता है, आमतौर पर अवसादग्रस्तता विकार या मादक द्रव्यों के सेवन का विकार। पुरुषों में आत्महत्या का जोखिम विशेष रूप से अधिक होता है। कॉलेज जाने वाले पुरुषों में महिलाओं की तुलना में आत्महत्या से मरने की संभावना चार से छह गुना अधिक होती है। महिलाओं में पुरुषों की तुलना में गैर–घातक तरीकों से आत्महत्या का प्रयास करने की संभावना दो से तीन गुना अधिक होती है।

(साभार: www.dw.com)

पटना के हॉस्टल में छात्रा की मौत से उठे सवाल

पटना के एक गर्ल्स हॉस्टल में रहकर नीट की तैयारी करने वाली एक छात्रा की 11 जनवरी को मौत के मामले ने हॉस्टल में रहने वाली लड़कियों की सुरक्षा पर सवाल खड़े कर दिए हैं। मामले को आत्महत्या दिखाने की कोशिश की गई लेकिन धीरे–धीरे इसने बलात्कार के बाद हत्या का रूप धारण कर लिया। छात्रा की मौत की इस वारदात ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया।

नीट छात्रा की मौत के बाद से हॉस्टल में रहने वाली लड़कियो में दहशत का माहौल है। एक छात्रा कहती हैं, ''अब यहां आते डर लगता है। जिस लड़की की मौत हुई, उसका चेहरा सामने आता है। हम लोग तो अपना सामान लेने आए हैं ताकि आने वाली इंटर की परीक्षा के लिए अपने नोट्स और किताबें यहां से ले जाएं। हमारी परीक्षा होनी है लेकिन पुलिस कहती है कि हॉस्टल सील हो गया।'' छात्रा के पास खड़े एक अभिभावक गुस्से में कहते हैं, ''अब हमको इस हॉस्टल में बच्ची को रखना ही नहीं है। यहां इतना घिनौना काम हुआ है कि सुनकर मन सिहर जाता है। बच्ची घर में रह ले वो ठीक है, उसकी जान और इज्जत तो बची रहेगी।''

बिहार के जहानाबाद की 18 वर्षीया रश्मि कुमारी (बदला हुआ नाम) पटना के इस हॉस्टल में रहकर बीते दो सालों से नीट की तैयारी कर रही थी। जहानाबाद, राजधानी पटना से महज 50 किलोमीटर दूर है। रश्मि ने साल 2024 में नीट क्वालीफाई कर लिया था लेकिन वो एक बार और चांस लेना चाहती थीं ताकि अपनी रैंक इंप्रूव कर सके। उनके मामा ने बीबीसी से कहा, ''बच्ची बहुत खुशमिजाज थी। हम लोगों ने कल्पना भी नहीं की थी कि इस तरह की कोई घटना हो जाएगी। मेरी बच्ची 5 जनवरी की दोपहर को हॉस्टल में पहुंच गई थी। वो नए साल में घर आई थी। रात 9 बजे के आसपास हम लोगों की उससे बात हुई और हॉस्टल में रहने वाली लड़कियों से साढ़े दस बजे तक। बाद में 6 तारीख को हमें हॉस्टल से बाहर के एक शख्स का फोन आया कि हमारी बच्ची बेहोश मिली है। उसे डॉक्टर सहजानंद के यहां लेकर जा रहे हैं। बाद में हॉस्टल की वार्डन ने फोन किया कि बच्ची क्रिटिकल है।

बीते डेढ़ दशक में पटना में हॉस्टल्स की संख्या में बहुत इजाफा हुआ है। देश के कई नामचीन कोचिंग संस्थानों के ब्रांच पटना में खुलने के बाद छात्र छात्राएं अपने सपनों को पूरा करने के लिए यहां आने लगे। 2010 से पहले यहां पर स्थानीय लोगों के कोचिंग संस्थान ही ज्यादा चलते थे। इसके बाद कई इलाके एजुकेशनल और हॉस्टल हब के तौर पर विकसित हुए।

हॉस्टल संचालकों ने नाम नहीं छापने की शर्त पर बताया कि उन्हें हॉस्टल शुरू करने से पहले कहीं पंजीकरण नहीं कराना पड़ा और ना ही उन्हें प्राइवेट हॉस्टल्स के लिए बनी किसी रेग्युलेटरी बॉडी के बारे में कोई जानकारी है। पटना में हॉस्टल तीन कैटेगरी के हैं। पहला जो आर्थिक तौर पर कमजोर परिवारों से आने वाले स्टूडेंटस के लिए हैं जिनका खान– पान, कमरा आदि सुविधाएं देकर किराया चार से आठ हजार प्रति माह होता है। उसके बाद के

हॉस्टल मिडिल क्लास परिवार से आने वाले स्टूडेंटट के लिए होते है जो हर माह 9 से 13 हजार रुपए तक का किराया दे सकते हैं। तीसरी कैटेगरी समृध्द परिवारों की होती है जिसमें किराया ज्यादा होता है। पटना में हॉस्टल खोलने के इच्छुक लोग किराए पर अपार्टमेंट या लीज पर घर लेते हैं। अपार्टमेंट में खाना बनाने से लेकर सुरक्षा तक की जिम्मेदारी हॉस्टल चलाने वाला परिवार ही संभालता है। वहीं जो ज्यादा प्रोफेशनली हॉस्टल चलाना चाहते हैं वो बाकायदा वार्डन, गार्ड, कुक वगैरह रखते हैं। साथ ही सुरक्षा वगैरह को ध्यान में रखते हुए सीसीटीवी कैमरे भी लगाए जाते हैं। कई हॉस्टल संचालक खुद से पहल कर थाने में ये जानकारी देते हैं कि वो हॉस्टल चला रहे हैं और उनके पास कितने स्टूडेंट्स रहते हैं। लेकिन ऐसे हॉस्टल संचालकों की तादाद बहुत कम है। वहीं स्टूडेंट्स के साथ साथ अभिभावक भी सुरक्षा और खान पान के मसले पर चिंतित रहते हैं। अरवल के एक अभिभावक कहते हैं, ''बच्ची हमेशा घटिया खाने की शिकायत करती है। पहले ये तसल्ली थी कि बच्ची हॉस्टल की चारदीवारी में सेफ है लेकिन अब तो हम दहल गए हैं।'' वहीं पटना में रहकर इंजीनियरिंग की तैयारी कर रही एक छात्रा कहती हैं, ''शुरू के दिनों में हॉस्टल में सब ठीक रहता है लेकिन बाद में खाने से लेकर साफ सफाई सब गड़बड़ा जाते हैं। कई बार हॉस्टल लेते वक्त तो बहुत कम मेल मेंबर दिखाई देते हैं लेकिन बाद में वो ज्यादा दिखने लगते हैं। हमारी मजबूरी है कि हमें पढ़ना है और मम्मी पापा हमें दिल्ली भेजना अफोर्ड नहीं कर सकते।''

पटना की नागेश्वर कॉलोनी में बड़ी संख्या में गर्ल्स हॉस्टल हैं। यहां पटना यूनिवर्सिटी छात्र संघ की अध्यक्ष मैथिली मृणालिनी भी रहती हैं। मैथिली कहती हैं, ''सुरक्षा, स्वास्थ्य और खानपान तीन मुख्य चिंताएं है। मैं जहां रहती हूं वहां एक बार नंगे तार से एक लड़की को बिजली का झटका लगा था। अगर आप बीमार पड़ जाएं तो कभी तो हॉस्टल मालिक आपको डॉक्टर तक पहुंचाने का इंतजाम कर देगा वरना आपको खुद जाना होगा। खाने–पीने की क्वालिटी का कोई चेक नहीं होता। कमरे इतने छोटे हैं कि उसमें सूरज की रौशनी भी नहीं पहुंच पाती। लेकिन हम लोग ऐसी परिस्थितियों में रहते हैं क्योंकि हमारे कोचिंग संस्थान नजदीक हैं। हॉस्टल मालिकों की पूरी मोनोपोली चल रही है यहां।''

(साभारः www.bbc.com/hindi)

प्रवासी लड़कियां

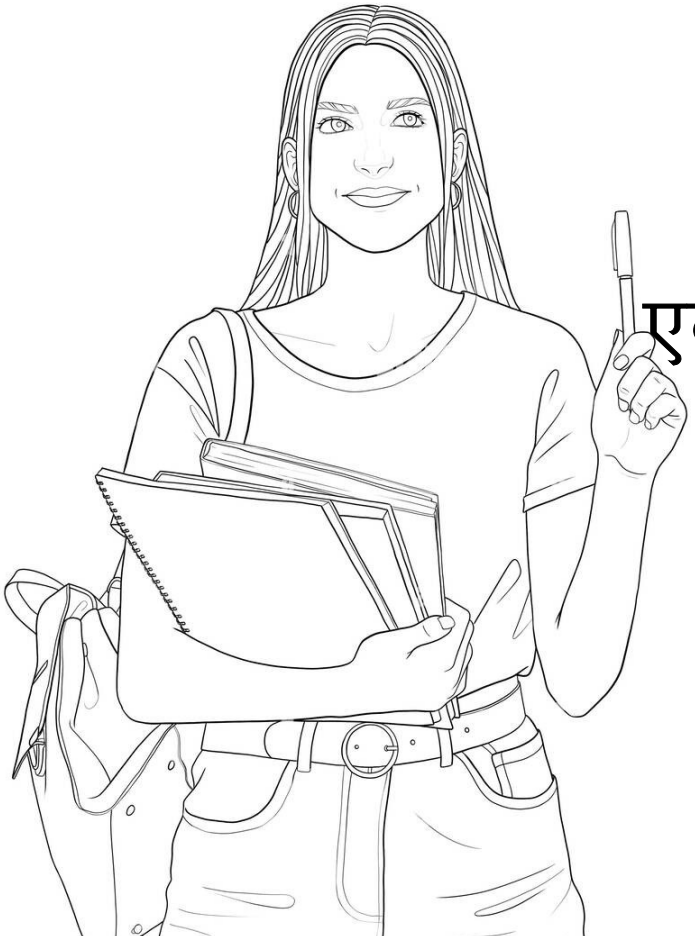

छोटे शहर की लड़कियाँ

एक कमी का एहसास

''मैं अपनी मां से लिपटी हुई थी। 23 साल की एक परिपक्व वयस्क, जो उनसे काफी लंबी और कद में बड़ी थी, मैं उनका ध्यान अपनी ओर खींचने की कोशिश कर रही थी। मैंने उनसे पूछा, ''क्या मैं दिल्ली जाकर अपना कुछ सामान ला सकती हूं?'' उन्होंने उसी लहजे में जवाब दिया जो भारतीय माता–पिता अक्सर इस्तेमाल करते हैं – कोई पक्का जवाब नहीं, लेकिन आप समझ जाते हैं कि आपने बातचीत शुरू कर दी है। उन्होंने बेपरवाही से बुदबुदाते हुए कहा, ''देखते हैं।''

जब कोविड–19 संकट की दूसरी लहर ने हमारी दुनिया को हिलाकर रख दिया था, तब मैं घर (जहां मेरा परिवार रहता है) लौट आयी थी। मैं नई दिल्ली में एक पत्रकार के रूप में काम कर रही थी, अस्पतालों और टीकाकरण केंद्रों का दौरा कर रही थी, और तमाम सावधानियां बरतने के बावजूद मुझे वायरस का संक्रमण हो गया था। मैं अपने माता–पिता के घर में एक कमरे में कैद थी। दो सप्ताह तक मैंने अपने जीवन के उन फैसलों के बारे में सोचा जिनकी वजह से मैं यहां पहुंची थी। कोविड के बाद उत्पन्न पहचान संकट में, मैंने अपनी नौकरी छोड़ दी। मैं दिल्ली से दूर जाना चाहती थी और दुनिया में अपनी जगह को लेकर असमंजस में थी। यह एक ऐसा गहन और गंभीर अनुभव था जैसा कि केवल 20–25 वर्ष की आयु का कोई युवा ही महसूस कर सकता है। मैं कहीं का हिस्सा बनना चाहती थी, घर जैसा महसूस करना चाहती थी।

छोटा शहर हमेशा महानगर बनने की आकांक्षा रखता है। असम के गुवाहाटी में जन्मी दृष्टि शर्मा इसे एक छोटा शहर मानती हैं जो महानगर बनने की आकांक्षा रखता है। उन्हें गुवाहाटी के छिपे हुए कोने, वहां का जीवंत संगीत और साइकिल से शहर के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमने के अनेक तरीके याद आते हैं।

हालांकि, गुवाहाटी अब टियर 3 शहर नहीं बल्कि टियर 2 शहर बन चुका है, यह सोचकर उसे परिभाषा को लेकर भी परेशानी होती है। शहरों को मापने का यह सिर्फ एक तरीका है, लेकिन छोटे शहर की भावना को इतनी आसानी से परिभाषित नहीं किया जा सकता। यह निरंतर प्रतीक्षा की भावना है, यह सोच है कि जीवन वास्तव में यहाँ नहीं है, बल्कि कहीं और शुरू होगा। आप हमेशा इस प्रतीक्षा के प्रति सचेत नहीं होते, लेकिन यह सूक्ष्म रूप से बनी रहती है। यह एक कमी का एहसास है। जब भी आप सुविधाओं से लैस किसी बेहतर शहर में जाते हैं, तो आपको अपने शहर की कमियों का एहसास होता है, शायद वहाँ मैकडॉनल्ड्स नहीं है, मल्टीप्लेक्स नहीं है और सनसनीखेज उपन्यास बेचने वाली किताबों की दुकान नहीं है, बल्कि आईएएस परीक्षा की तैयारी कर रहे छात्रों के लिए सिर्फ प्रतियोगिता दर्पण है। और शायद मॉल वैश्विक की बजाय स्थानीय जैसा दिखता है। इसी कमी के कारण दृष्टि अपने जन्म शहर से बाहर चली गई। वह अच्छी शिक्षा भी चाहती थी। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि उसे शहर छोड़ना पड़ेगा और कॉलेज जाने के लिए वह दिल्ली विश्वविद्यालय के हंसराज कॉलेज पहुंची।

इस लिहाज से मेरी कहानी दृष्टि से मिलती–जुलती थी। मेरी मुलाकात हंसराज स्कूल में साहित्य की कक्षा में दाखिला लेने

प्रवासी लड़कियां

के दौरान हुई थी। मैं भी शिक्षा के लिए अपने गृहनगर से बाहर आई थी। हरियाणा के एक पिछड़े शहर में जन्मी, मैंने 12वीं की बोर्ड परीक्षा में बहुत अच्छे अंक प्राप्त किए थे। डॉक्टरों के परिवार में मैं सबसे अलग थी, और कला के प्रति मेरा झुकाव था। दिल्ली विश्वविद्यालय में दाखिला लेने के साथ ही मैं अपने पिता के परिवार की चचेरी बहनों में से पहली ऐसी बहन बन गई जिसने पढ़ाई के लिए घर छोड़ा। मेरे परिवार का एक हिस्सा सदमे में था, जिसके लिए मैं अपनी माँ की आभारी हूँ। वह पाँच बहनों के परिवार से हैं– और सभी किताबें पढ़ने और शिक्षा प्राप्त करने की प्रबल इच्छुक हैं। हम सभी– मेरी मां, उनकी बहनें, दृष्टि और मैं– अपने–अपने शहर छोड़कर आए थे। हम सभी छोटे शहर की लड़कियां थीं।

दृष्टि से बातचीत आगे बढ़ने पर मैंने उससे पूछा कि क्या वह खुद को छोटे शहर की लड़की मानती है। दृष्टि के इस जवाब ने मुझे चौंका दिया, "मैं खुद को छोटे शहर की लड़की नहीं मानती, लेकिन छोटे शहर की लड़की होना मेरी पहचान का एक हिस्सा जरूर है।" मैंने सोचा, "अहा! मुझे तो हमेशा ऐसा ही महसूस होता है!" मेरे लिए, वह कथन एक गूंज की तरह था। उसने कहा कि उसका एक हिस्सा जानता था कि वह एक छोटे शहर से है, बड़े शहर में अपना रास्ता बनाने के लिए संघर्ष कर रही है, लेकिन यह एक ऐसा हिस्सा था जो अक्सर सुप्त अवस्था में रहता था, वह हिस्सा जिसे आप समय के साथ अपनाई गई पहचानों की परतों के नीचे दबाते रहते हैं। लेकिन कभी–कभी यह सुप्त अवस्था टूट जाती थी, और आपको अचानक एहसास होता था कि यह आपके भीतर हमेशा से मौजूद था। कुछ दिन ऐसे होते हैं जब मैं इस हिस्से को संजो कर रखती हूँ, जब मैं बैठकर इससे बातें करती हूँ। फिर कुछ दिन ऐसे भी होते हैं जब मैं चाहती हूँ कि काश मैं इसे हमेशा के लिए सुला पाती।

यही वो बात है जो मुझे यहाँ का हिस्सा नहीं बनने देती। छोटे शहर की सभी लड़कियों की तरह, मैं भी यहाँ अपनी पहचान बनाने और दूसरों द्वारा पहचाने जाने के बीच फंसी हुई हूँ। जब मैं नई दिल्ली आयी, तो मुझे छोटे शहर का वो एहसास हुआ, जहाँ हमेशा कुछ न कुछ कमी महसूस होती रहती है। मैंने अपने आस–पास देखा तो पाया कि मेरे सहपाठी दिल्ली की भाषा में माहिर थे। वे सब एक–दूसरे को जानते थे और एक जैसे स्कूलों से आए थे, डीपीएस आरके पुरम, मॉडर्न स्कूल, श्री राम स्कूल, डीपीएस वसंत कुंज आदि, ये सब उनके अपने ही खास दोस्तों का समूह था।

राणा दासगुप्ता अपनी पुस्तक 'कैपिटल' में दिल्ली के बारे में लिखते हैं, ''यहाँ परिचय कराना आवश्यक है। लोग आपको अपने जीवन में शामिल करने से पहले जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं, यही कारण है कि नाम और पते का उल्लेख करना सामाजिक बातचीत का एक अभिन्न अंग है, यदि लोगों को एक उचित सामाजिक जीवन जीना है तो उन्हें अपने संपर्कों और निष्ठाओं का प्रचार करना होगा।'' अपने स्कूलों और पते के बारे में जानकारी साझा न करने के अलावा, मैंने वे सभी शो नहीं देखे थे जो उन्होंने देखे थे, वे किताबें नहीं पढ़ी थीं जो उन्होंने पढ़ी थीं और मैं शब्दों का उच्चारण भी सहजता से नहीं कर पाती थी। मुझे ऐसा लगता था मानो मेरी अपनी जिंदगी एक फिल्म हो जिसे मैं देख रही हूँ। मैं उसमें एक किरदार थी, लेकिन सिर्फ एक दर्शक की तरह। मैं बड़े शहर के लोगों जैसा बनना चाहती थी।

मैं तथाकथित बड़े शहर के लोगों से खास तौर पर नाराज नहीं थी, और मैं खुद को पीड़ित के रूप में पेश नहीं करना चाहती। हालाँकि मैंने देखा कि वर्ग और सामाजिक–सांस्कृतिक पूंजी किस तरह मेरे सामने अपना खेल खेल रही थी, लेकिन मैं समझ गई कि वे भी अपनी परिस्थितियों का ही परिणाम थे। एक छोटे शहर की लड़की होने के नाते, मैं यह लिखते समय बहुत विशेषाधिकारों का सामना कर रही हूँ; वर्ग, जाति और एक स्थिर परिवार का होना, और भी बहुत कुछ। हालाँकि, मैंने उन लोगों से बात करने की कोशिश की है जिन्हें ये विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। मैंने उनकी कहानियाँ सुनी हैं, और हमने मिलकर कुछ भावनाओं पर हँसी उड़ाई है। हमने एक ऐसा साझा आधार पाया है जिसे मैं व्यक्त करना चाहती हूँ। हमारे आस–पास के कई लोगों की तरह हमें उतना अवसर नहीं मिला, इसका मतलब था कि हमारे पास आगे देखने के लिए बहुत कुछ था, हमारे पास निराशावादी न बनने का विकल्प था। हम रोमांटिक हो सकते थे। इसका मतलब था कि हम रिचर्ड लिंकलेटर और शेक्सपियर को पहली बार जान सकते थे – एक ऐसा आनंद जो बड़े शहरों के लोगों को अपने वयस्क जीवन में नहीं मिलता। अक्सर, इसके साथ ही हमें पीछे छूट जाने का अहसास भी होता था, लेकिन आखिरकार, हमें अपने जैसे कई लोग मिले – पटना, मुरादाबाद, त्रिशूर, पानीपत और अंबाला आदि से। इसका यह भी अर्थ था कि सीखने के साथ–साथ हमें बहुत कुछ भूलना भी था। और अंततः, इसका अर्थ यह था कि हमारा जीवन आखिरकार शुरू हो रहा था।

(यह आलेख मुस्कान नागपाल द्वारा लिखा गया है जो अंग्रेजी साहित्य में स्नातक हैं और यंग इंडिया फेलो हैं। साभार : livewire.thewire.in)

आपकी राह देखता है आपका शहर

मायके के 'खोईचा' की तरह लौट आने की रखता है उम्मीद

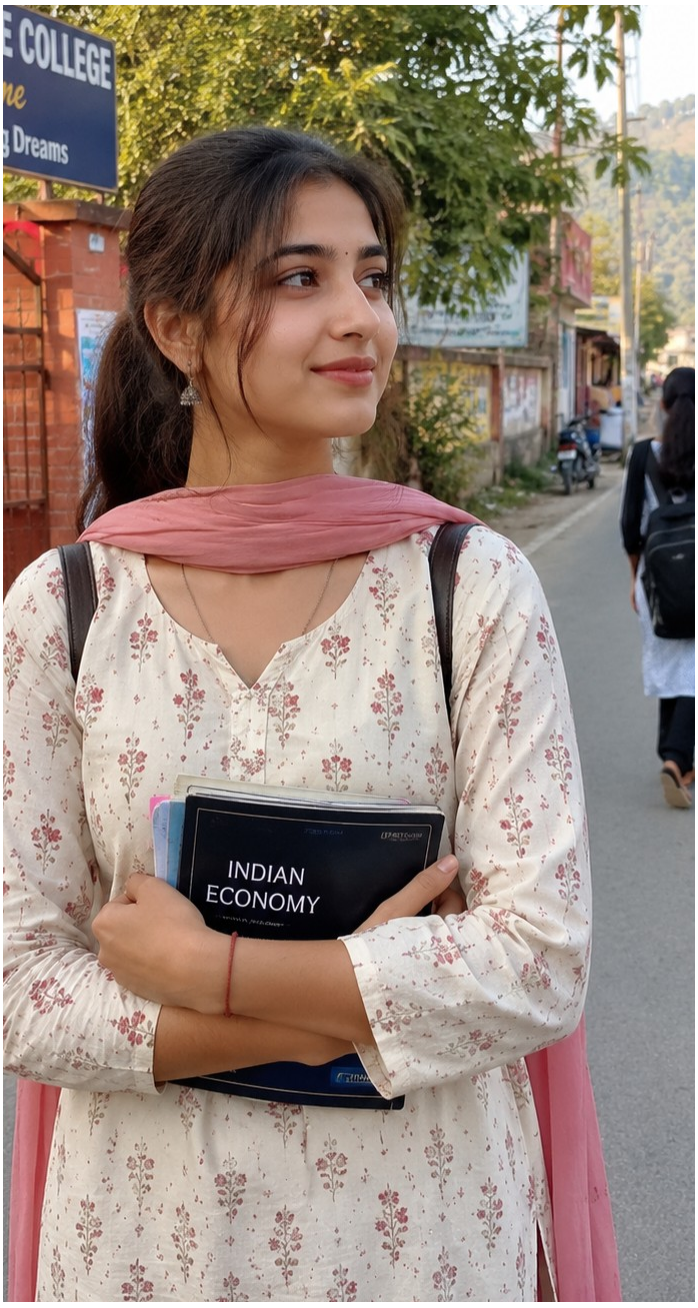

अनुप्रिया वर्मा

पिछले कई सालों ने मुझे मुंबई महानगर का दीवाना बना दिया है, इसकी कई वजहें हैं, जो यहां तीन महीने तक मूसलाधार बारिश में बुरी स्थिति होने के बावजूद मेरे जेहन में कभी इस शहर से सेपरेशन या अलगाव होने का ख्याल नहीं आया। लेकिन दिल से अब भी मैं स्मॉल टाउन गर्ल ही हूं और वो भी प्राउड करने वाली, हालांकि महानगर में मिली मेरी प्रिय दोस्त, जो कि मेरे शहर की गिनती एक गांव में ही करती है, वह जब मेरी लिखी ये बातें पढ़ेगी, तो टोके बिना रह नहीं पायेगी। सो, बहरहाल उसके टोकने और हमारी तू–तू मैं से पहले मैं बता दूं कि यहां जो मैंने अपनी बात कहने की भूमिका बांधी है, उसका सीधा कनेक्शन इस बात से है कि मुंबई महानगर आने से पहले भी मैंने अपने राज्य में ही रहते हुए पलायन की मार झेली है, जब मुझे अपने शहर को छोड़ कर दूसरे शहर अपनी उच्च शिक्षा हासिल करने जाना पड़ा था, क्योंकि 12वीं की पढ़ाई के बाद, वहां विकल्प मौजूद नहीं थे और शुक्र है कि मुझे महानगर आने से पहले जीवन के उन सभी पड़ावों का सामना करने का मौका मिला, ताकि मेरे लिए अकेले आकर इस शहर में रहना और अपनी पैठ जमाना, कठिन था, लेकिन नामुमकिन कभी नहीं लगा। चूंकि मैंने अपनी जिंदगी के वे साल हॉस्टल में गुजारे, जिन सालों का आपकी आने वाली जिंदगी पर गहरा असर होता है। इन शहरों ने मुझे आत्मनिर्भर बनाने में सबसे अधिक भूमिका निभायी।

और आज मैं पूरी शिद्दत से इस बात पर विश्वास करती हूं कि आप भले ही बार–बार

अन्य और विभिन्न शहरों में पलायन करते रहें, लेकिन कुछ बातें हैं, जो आपको उस शहर से मिलती है और कभी पीछे नहीं छूटती। ठीक उसी तरह जैसे मायके जाने पर हर बार बेटी को 'खोइचा' मां देती है इसी उम्मीद से कि बेटी फिर लौटेगी। हर शहर को भी आपसे यही उम्मीद हो जाती है।

बड़े शहरों में बेखौफ होना

छोटे शहरों में अपने दम, अपने निर्णय और सोच के साथ रहने की आजादी आपको बड़े शहरों के मनगंढ़त खौफ से बचा देती है। छोटे शहरों में किसी हॉस्टल में रहना, हर लड़की के लिए टेस्ट मैच है, जिसमें धीरे–धीरे खेल कर, वह किसी बड़े शहर में किसी वन डे में पारी खेलने के लिए परिपक्व होती हैं। जैसे–जैसे आप बड़े शहरों में अपनी धाक जमाने लगते हो, आपको लगता है कि आप अपने पुराने शहर को पीछे छोड़ आये हैं, लेकिन सच यह है कि आपका रिश्ता उस पुराने शहर से और गहराता जाता है।

शिकवा नहीं किसी से

मैं तो इस एहसास से हर बार, कई बार गुजरती हूं और हर बार अपने शहर को शुक्रिया कहती हूं। मुझे अपने पुराने शहर को शुक्रिया कहने की चाहत इसलिए होती है कि कभी घर में छोटी होने के कारण पैम्पर होने वाली लड़की ने सर्वाइवल के गुर सीखे, तो हॉस्टल में रहते हुए सीखे। पापा की डांट खाने के बावजूद लौकी, परवल और ऐसी तमाम सब्जियां खाने से इंकार करने वाली लड़की ने न चाहते हुए भी मेस में ये सारी सब्जियां बिना नखरे के खाना शुरू किया और शायद यही वजह है कि आज जब टमाटर की कीमत ने आसमान छू रखा है, बिना टमाटर के भी मेरे धैर्य का जायका बिगड़ा नहीं है और समस्या की जगह मुझे समाधान और विकल्प नजर आते हैं।

परिस्थितियों से निबटना

मुझे सोने के लिए कभी भी लोकप्रिय शो शक्तिमान के विलेन किलविश की तरह पूरे कमरे में अंधेरा कायम करने की जरूरत नहीं पड़ती है, मैं सीढ़ियों पर, ट्रेन या बस की असहज शीटों पर भी आराम से घंटों नींद ले सकती हूं, क्योंकि मुझे ये गुर मेरी हॉस्टल की रूम मेट्स, जो कई कॉम्पटीशन की तैयारियां किया करती थीं और वो भी रात में घंटों जाग कर, तब हॉस्टल की बत्तियां जली रहती थी, रातभर, शुरुआती दिनों में गुस्सा भी आता था, लेकिन बाद में मैंने इस पर काबू पाना सीखा और शुक्र है सीखा, क्योंकि इसके बाद मुझे ये बातें परेशान नहीं करती, क्योंकि अब मैंने परिस्थिति पर काबू पाना सीख लिया है।

अनजाने चेहरों पर भी भरोसा

हॉस्टल में रहने के दौरान, जब आप पर हर काम करने की जिम्मेदारी आती है, तो आपका दायरा भी बढ़ता है और आप नए लोगों से मिलते जाते हैं, ऐसे में धीरे–धीरे आपके नए रिश्ते बनते हैं, मैंने ये हुनर भी अपने पुराने शहर से सीखा और मुंबई आने के बाद, मैंने महसूस किया कि अनजाने लोगों को पहले शक की निगाह से नहीं देखा जाए, उन पर भरोसा करके देखने की कला मैंने सीखी। रात के एक बजे भी एक अनजान ऑटो वाले के सहारे घर वापस लौटते हुए डर की भावना न महसूस होना से लेकर रोजाना ऑटो राइड में एक दूसरे की कहानियों से सीखने की नींव छोटे शहर ने दी, जिसने वहां के किराने वाले भईया से लेकर गैस, मेस, आयरन करने वाले भईया तक से मानवता और अपनेपन का रिश्ता बनाना सिखाया।

सेलिब्रेशन में यकीन

निस्संदेह मुंबई उन शहरों में से एक है, जहां हर पर्व यहां तक कि छोटे पर्व और त्योहारों को धूमधाम से मनाया जाता है। अपने होम टाउन में रहते हुए इस बात का एहसास कम ही होता था, चूंकि परिवार में जो त्यौहार हैं, वे ही प्राथमिकता से मनाये जाते थे। लेकिन हॉस्टल में हर धर्म, हर प्रान्त की लड़कियों से मिलना हुआ और हर त्यौहार हमने साथ में मिल कर मनाये और महसूस किया, जीवन में हंसना–सेलिब्रेट करना कितना जरूरी है और यह कितना आनंदपूर्ण होता है, इसलिए जब मुम्बई आयी और हर दूसरे दिन लोगों को किसी ने किसी त्यौहार पर झूमते देखा, तो यह अटपटा सा नहीं लगा, लगा जैसे यह मेरा ही हिस्सा है, जिसने बस अपनी जगह बदल ली है, ठीक मेरी तरह जो कभी अपने होमटाउन को छोड़, एक दूसरे छोटे शहर का रुख करते हुए महानगर आ पहुंचती है, पलायन का सिलसिला जारी रहता है, लेकिन पीछे छूटे शहर के अनुभव हर नए शहर के अनुभव में काम आते हैं और और पुराना शहर हर बार नया सा लगने लगता है।

(साभार : www.hercircle.in)

अधूरे ख्वाब

आज भी सपना है शहर जाकर पढ़ना

गांव की लड़कियों के लिए हॉस्टल में रहकर पढ़ाई करना चुनौती

कभी भी गांव से शहर पहुंचने तक का सफर आसान नहीं होता है। यह ज्यादा कठिन तब हो जाता है, जब लड़कियों के कॉलेज या उच्च शिक्षा के लिए शहर जाने की बात होती है। शिक्षा का अधिकार मिलने से लड़कियों की स्कूलों तक पहुंच आसान तो हुई है। लेकिन यह कहना ही काफी नहीं है कि अब तो सारी लड़कियां स्कूल जाती हैं। ग्रामीण भारत की आज भी बहुत सारी लड़कियां कॉलेज आने के लिए संघर्ष कर रहीं हैं। किसी तरह वह कॉलेज पहुंच भी रहीं हैं तो उनका शहर में रहना अपने आप में एक चुनौती है।

ग्रामीण क्षेत्र की लड़कियों के उच्च शिक्षा तक पहुंच में काफी अंतर देखने को मिलता है। ग्रामीण परिवेश में लड़कियों के लिए घर परिवार के कामों में हाथ बंटाना जरूरी माना जाता है। लड़कियों को सशक्त होने के लिए नहीं अब भी शादी के योग्य होने के लिए पढ़ाते हैं। उन पर स्कूल के साथ घर के काम में हाथ बंटाने की जिम्मेदारी रहती है। आज भी माना जाता है कि लड़कियों को घर के सारे काम आने चाहिए। वही लड़की अच्छी मानी जाती है, जो सारे काम करती हो। ऐसे में बहुत बार तो गांव की लड़कियों के लिए स्वयं घर की जिम्मेदारी ही उनका नैतिक धर्म बन जाता है। जिस कारण वह स्कूल भी नहीं जा पाती हैं। इसका सीधा असर उनकी शिक्षा में पड़ता है।

द मूकनायक में छपी एक रिपोर्ट के मुताबिक, लगभग 86 फीसदी महिलाएं और लड़कियां रोज किसी न किसी घरेलू काम में हिस्सा लेती हैं, जबकि पुरुषों में यह संख्या सिर्फ 66 फीसदी है। इससे साफ पता चलता है कि घर के कामों का बोझ अब भी ज्यादातर महिलाओं पर ही रहता है जिस कारण वह पढ़ाई छोड़ देती हैं। रिपोर्ट के मुताबिक, 14 साल की उम्र तक ज्यादातर बच्चे पढ़ाई में जुड़े रहते हैं। इस उम्र में केवल 3.9 फीसदी बच्चे ही स्कूल या कॉलेज में नामांकित नहीं होते हैं। लेकिन जैसे–जैसे उम्र बढ़ती है, पढ़ाई छोड़ने वालों की संख्या भी बढ़ने लगती है। 18 साल की उम्र तक पहुंचते–पहुंचते लगभग 32.6 फीसदी युवा किसी भी शैक्षणिक संस्थान में नामांकित नहीं रहते, इनमें से 33.4 फीसदी लड़कियां और 31.6 फीसदी लड़के होते हैं।

द हिन्दू में छपी रिपोर्ट के अनुसार, कॉलेज स्तर पर कुल नामांकन (जीईआर) की बात करें तो महिलाओं का अनुपात पुरुषों से थोड़ा ज्यादा है। लेकिन अगर क्षेत्र और विषय के हिसाब से देखें तो तस्वीर बदल जाती है। उदाहरण के लिए, स्नातक से पीएचडी तक एसटीईएम (विज्ञान, टेक्नोलॉजी, इंजीनियरिंग, गणित) विषयों में केवल 42.5 फीसदी छात्राएं नामांकित हैं। यानी कि अब भी लड़कियों को इन विषयों को चुनने के लिए और प्रोत्साहित करने की जरूरत है। साल 2011 की अंतिम जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, कुल 64.63 फीसदी महिलाएं साक्षर थीं, जबकि पुरुषों में यह संख्या 80.88 फीसदी थी। गांव में जब लड़कियां 12वीं पास हो जाती हैं, तब उनके माता पिता लड़कियों को शहर भेजने के पक्ष में नहीं होते हैं।

एक तो इसके पीछे वही

पितृसत्तात्मक रूढ़िवादी सोच काम करती है, जो यह कहती है कि लड़कियां शहर जाकर बिगड़ जाती हैं। लड़कियों के ऊपर घर समाज की इज्जत का अतिरिक्त बोझ डाल दिया जाता है। गांव और घरों में यह कहा जाता है कि जो हम अभी इसके आगे के कॉलेज के लिए खर्चा करेंगे, उन्हीं पैसों से इसकी शादी हो जाएगी। उनके लिए प्राथमिकता उनकी शादी हो जाती है न कि उनकी उच्च शिक्षा। इन सब परिस्थितियों के बीच लड़कियों का एडमिशन कॉलेज में नाम मात्र के लिए कर तो दिया जाता है, लेकिन वह कभी कभार ही कॉलेज जा पाती हैं। ज्यादातर सिर्फ पेपर देने के लिए ही कॉलेज में पहुंच पाती है। ऐसे में यह कहना कि कॉलेज में लड़कियों के पंजीकरण की संख्या में वृद्धि हुई है, यह आंकड़े दिखाकर लोगों को भटकाने की नीति लगती है।

बहुत सी हिदायतों के बीच जब कुछ लड़कियां कॉलेज का सफर तय करती हैं, तब उन्हें बहुत सी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उत्तराखंड के पिथौरागढ़ जिले के भट्ट यूडा में रहने वाली सुनीता (बदला हुआ नाम) बताती हैं, "मेरे घर वाले चाहते तो थे कि मैं कॉलेज में पढ़ाई करूं, लेकिन वह मेरे लिए शहर में कमरा लेकर रहने के पक्ष में बिल्कुल भी नहीं थे। मुझे कहा गया कि कभी– कभी घर से ही चली जाया करो या फिर किसी रिश्तेदार के यहां रह लेना। मेरी दीदी का ससुराल वहीं शहर में था तो मुझे वहां रहना पड़ा। दीदी के ससुराल वाले भी मेरे रोज कॉलेज जाने में प्रश्न उठाते थे। शाम को आने में देर हो जाती तो दीदी भी बात नहीं करती थी। मेरे घर में शिकायत कर देती थी कि मैं इतना देरी से आई हूं। मेरे ऊपर हमेशा समय से घर पहुंचने का दबाव बना रहता था। वह माहौल मेरे लिए कठिन था, जहां मैं जबरदस्ती जाती थी। दीदी के ससुराल वाले मुझे लेकर उसे ताने मारते थे। एक दिन तो बात इतनी बिगड़ गई कि दीदी ने खुद बोल दिया। तू जा कभी मत आना यहां।" आगे वह कहती हैं," मेरे लिए यह सब सदमे की तरह था। मैं जाऊं भी तो कहां। इसका असर मेरे मानसिक स्वास्थ्य में पड़ा। मैं उदास रहती किसी से बात नहीं करती थी। घर में भी नहीं। वहां से छोड़ तो दिया था लेकिन जाती कहां इसका कोई अंदाजा नहीं था। मुझे याद है वह तीन दिन जो मैने बड़ी मुश्किल से अलग अलग लोगों के यहां बिताए। दिन तो कहीं भी कट जाता था। रात डराने लगती थी। मेरी ही दीदी ने मुझे बताया कि शहर में एक कमरा है, वहां पूछकर आना। घर वालों को भी उसने मनाया। मेरे लिए बड़ी मुश्किल से एक कमरा लिया गया और फिर से वही समस्या आने लगी अकेला कैसे छोड़ दें, कोई तो साथ होना चाहिए।"

एक तो हमारे परिवार वालों के ऊपर यह आर्थिक दबाव रहता है, वह इतना किराया नहीं दे सकते कि हम रोज कॉलेज आना जाना कर सकें। कभी देर हो गई तो गांव के लिए गाड़ी मिलना कठिन हो जाता है। बाकी सामाजिक दबाव तो हमारी परवरिश का हिस्सा ही है जो हमें स्वयं बताता है कि हमने क्या करना है क्या नहीं।

जब इस विषय पर हमने भट्ट यूडा गांव की रेखा से बात की, जो खुद दो लड़कियों की मां हैं, तो वो कहती हैं, "हम तो चाहते हैं हमारी बच्चियां पढ़ें, आगे बढ़ें। लेकिन हमारे भीतर भी सामाजिक दबाव बना रहता है। आए दिन लड़कियों से जुड़ी खबरें आती हैं, जहां कॉलेज में लड़कियों के साथ यौन हिंसा होती है। वह हमें डराती है। आखिर हमारी लड़कियों की सुरक्षा की जिम्मेदारी कौन लेगा? जिस तरीके से कॉलेज की छवि को पेश किया गया है यह महिला विरोधी है। इसलिए लड़कियों की शादी करना हम सबसे सुरक्षित मानते हैं। मैं चाहती हूं कि उन पर भरोसा करूं। उन्हें शहर जाने की छूट दूं। जो सब मुझे सहन करना पड़ा उन्हें न करना पड़े। मेरी लड़कियां आत्मनिर्भर बनें। इन सब के बीच समाज बहुत डरा देता है। शहर जाकर लड़की बिना किसी डर के अपनी मनमर्जी करने लग जाएगी। इसलिए मुझे भी लगता है कि लड़कियों को अकेले नहीं छोड़ना चाहिए। उनके साथ कोई घर का व्यक्ति हो जो उनकी देखरेख कर सके। यह हमारे लिए भी अच्छा है।"

नहीं जुड़ पा रहे शहरों के कॉलेज से

द हिंदू की रिपोर्ट के मुताबिक, स्कूल आने–जाने का परिवहन भी एक बाधा हो सकता है, और हरियाणा, पंजाब और तमिलनाडु जैसे राज्यों में स्कूली छात्राओं के लिए मुफ्त बस पास, साथ ही बिहार और अन्य राज्यों में लड़कियों को मुफ्त साइकिल देने की योजना ने नामांकन में सुधार किया है, हालांकि राजस्थान में यह उतना कारगर नहीं रहा है। इसी तरह यह उत्तराखंड के लिए भी उतना अच्छा साबित नहीं हुआ है क्योंकि यहां सड़कें और स्कूल या कॉलेज गांव से काफी दूर हैं। गांव अभी भी मुख्य शहरों से बहुत कटे हुए हैं। इसका सीधा असर वहां की जनसंख्या के आम जीवन पर पड़ता है। भौतिक सुख सुविधाओं से वंचित गांव, बेहतर संचार व्यवस्था, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन में भी पिछड़ जाते हैं। इसका खामियाजा मासूम लोगों को उठाना होता है। क्या गांवों से रोज कॉलेज पहुंचा जा सकता है? इस सवाल पर इसी वर्ष कॉलेज में दाखिला लिए हुए दिया बताती हैं, "एक तो हमारे परिवार वालों के ऊपर यह आर्थिक दबाव रहता है, वह इतना किराया नहीं दे सकते कि हम रोज कॉलेज आना जाना कर सकें। कभी देर हो गई तो गांव के लिए गाड़ी मिलना कठिन हो जाता है। बाकी सामाजिक दबाव तो हमारी परवरिश का हिस्सा ही है जो हमें स्वयं बताता है कि हमें क्या करना है क्या नहीं।"

जब तक परिवार और समाज की सोच नहीं बदलेगी, तब तक ग्रामीण लड़कियों की उच्च शिक्षा तक की राह आसान नहीं होगी। शिक्षा सिर्फ किताबों तक सीमित नहीं है।

(साभार : hindi.feminisminindia.com)

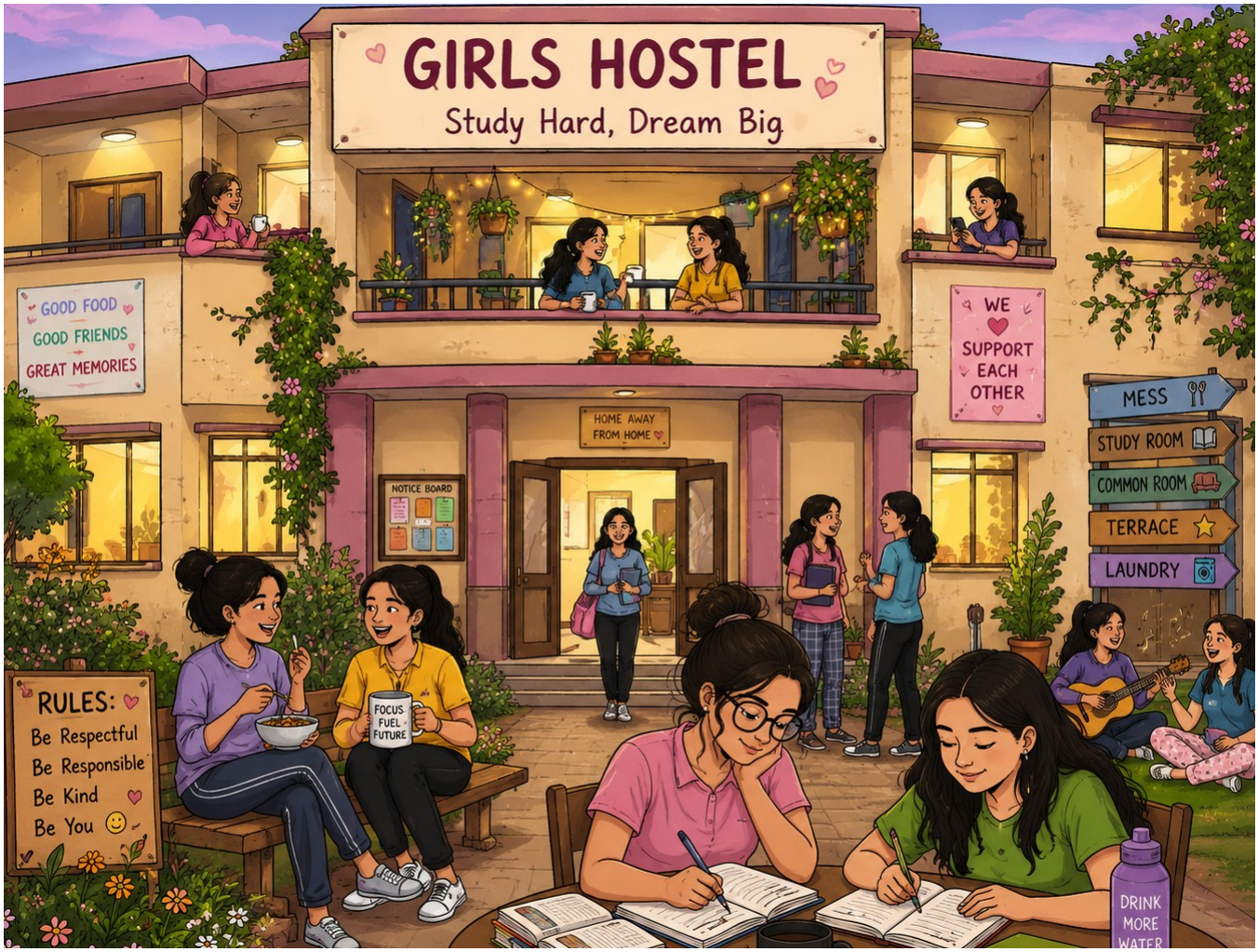

सुरक्षा के नाम पर लड़कियों पर पाबंदी!

भारत आज उस दौर में है जहां महिलाएं शिक्षा और करियर की नई ऊंचाइयां छू रही हैं। वे छोटे कस्बों और गांवों से निकलकर बड़े शहरों में पढ़ाई करने जा रही हैं। प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रही हैं और आत्मनिर्भर बनने का सपना देख रही हैं। इस सफर में हॉस्टल उनके लिए 'दूसरा घर' बन जाता है। हॉस्टल न सिर्फ रहने की व्यवस्था और खाने की सुविधा देता है, बल्कि वहां अच्छे दोस्त और पढ़ाई के लिए शांत माहौल मिलता है। यह उनकी जिंदगी का अहम हिस्सा बन जाता है। लेकिन जब छात्राएं हॉस्टल में प्रवेश करती हैं, तो उन्हें सुरक्षा के नाम पर इतने नियमों का सामना करना पड़ता है कि कई बार वे खुद को बंधन में महसूस करती हैं। गेट खुलने–बंद होने का समय, बाहर जाने की अनुमति, हर छोटी–बड़ी बात पर नजर रखना, यह सब उन्हें सोचने पर मजबूर करता है कि यह जगह सच में उनका घर है या फिर एक पिंजरा। आज कॉलेज में पढ़ने आने वाली ज्यादातर छात्राएं 18 साल से ऊपर की होती हैं। यानी वे बालिग हैं, अपने फैसले खुद लेने में सक्षम हैं। सवाल यह उठता है कि क्या ये नियम सच में सुरक्षा के लिए हैं या फिर यह उनकी आजादी पर नियंत्रण करने का तरीका है?

सुरक्षा या छात्राओं की आजादी पर नियंत्रण?

भारत के अधिकतर महिला हॉस्टलों में कुछ समान नियम देखने को मिलते हैं। जैसे, शाम 7 या 8 बजे तक हॉस्टल का गेट बंद हो जाता है। अगर कोई लड़की बाहर जाती है तो रजिस्टर में नाम

आजादी पर नियंत्रण

दिल्ली में हॉस्टल में आजादी के लिए छात्राओं ने पिंजरा तोड़ आंदोलन चलाया।

लिखना और लौटने का समय दर्ज करना होता है। यहां तक कि डिलीवरी लेने का समय भी तय होता है। अगर कभी देर से लौटें तो वार्डन से लिखित अनुमति लेनी पड़ती है। दोस्तों या रिश्तेदारों से मिलने पर भी रोक–टोक रहती है, खासकर अगर मुलाकात हॉस्टल परिसर के अंदर करनी हो। इन नियमों का दावा होता है कि वे छात्राओं की सुरक्षा के लिए हैं। लेकिन व्यवहार में वे छात्राओं की आजादी को सीमित कर देते हैं। अगर कोई छात्रा देर तक लाइब्रेरी में पढ़ाई करना चाहती है, रिसर्च वर्कशॉप में जाना चाहती है, या डिबेट और सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेना चाहे तो यही नियम उसके रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट बन जाते हैं।

भुवनेश्वर के एक कॉलेज में पढ़ाई करने वाली छात्रा बताती हैं, "मैंने कॉलेज के हॉस्टल में रहकर महसूस किया कि सुरक्षा के नाम पर बनाए गए कई नियम दरअसल हमें नियंत्रित करने का साधन बन गए हैं। रात 8 बजे गेट बंद हो जाना हमेशा परेशानी नहीं था, लेकिन जब भी किसी काम से बाहर जाना पड़ता, तो समय पर लौटने की हड़बड़ी और भाग–दौड़ जरूर करनी पड़ती थी। वार्डन भी काफी सख्त थीं, इसलिए नियमों से जरा सा इधर–उधर होना भी मुश्किल हो जाता था। घर जाने के लिए छुट्टी लेनी होती थी, तो उसके लिए भी कई प्रोफेसरों से एक–एक करके साइन करवाने पड़ते थे।" "जब हॉस्टल में सीसीटीवी जैसी बुनियादी सुविधाएं और सुरक्षा गार्ड तक मौजूद नहीं होते, तो साफ समझ आता है कि नियमों का मकसद हमारी सुरक्षा नहीं, बल्कि हमें काबू में रखना है। ऐसे माहौल में कई बार ऐसा लगता था जैसे हम सुरक्षित नहीं, बल्कि लगातार निगरानी में रह रहे हैं।" हरियाणा के एक विश्वविद्यालय में पढ़ने वाली छात्रा अपना अनुभव साझा करते हुए बताती हैं, "हमारे हॉस्टल में शाम 7.30 बजे के बाद गेट बंद कर दिया जाता है। कई बार ऐसा हुआ कि मैं प्रतियोगिता या स्टडी ग्रुप की वजह से थोड़ी देर से लौटी, उस पर वार्डन ने मुझे काफी फटकार लगाई।"

पटना विश्वविद्यालय में पढ़ने वाली एक छात्रा बताती है, "हमारे हॉस्टल में लड़कियों को बाहर जाने के लिए 'एंट्री–एग्जिट रजिस्टर' में साइन करना पड़ता है। अगर कोई देर से लौटे तो पूरे बैच को नोटिस मिल जाता है। जबकि लड़कों के हॉस्टल में ऐसे कोई नियम नहीं हैं। इससे हमेशा यही एहसास होता है कि लड़कियों पर भरोसा नहीं किया जाता।" इन अनुभवों से साफ है कि छात्राओं के लिए हॉस्टल नियम सुरक्षा की बजाय पाबंदी का रूप ले चुके हैं। आज भारत में लाखों लड़कियां अच्छी पढ़ाई का सपना लेकर कॉलेज और यूनिवर्सिटी में दाखिल हो रही हैं। इंडिया टुडे में छपी, सर्व भारतीय उच्च शिक्षा सर्वेक्षण की साल 2021 की रिपोर्ट के अनुसार, 18 से 23 साल की करीब 28.5 फीसदी लड़कियां इस सफर में शामिल हैं। इसका मतलब है कि वे बालिग हैं, खुद पर निर्भर बनना चाहती हैं, और हॉस्टल में रहकर अपने फैसले खुद लेना चाहती हैं। लेकिन कई संस्थानों में अब भी ऐसे नियम लागू हैं जो सिर्फ महिला छात्राओं पर सख्त पाबंदियां लगाते हैं। जब कई छात्राएं अपने हॉस्टल और पीजी में लगे सख्त और भेदभावपूर्ण नियमों से परेशान थीं, तब दिल्ली की कुछ बहादुर लड़कियों ने मिलकर 'पिंजरा तोड़ आंदोलन' शुरू किया। ये सिर्फ एक संगठन नहीं, बल्कि एक जरूरत थी, एक आवाज, जो कह रही थी कि महिलाएं भी अपने फैसले खुद ले सकती हैं, उन्हें भी आजादी से जीने का हक है। इस आंदोलन का मकसद था उन नियमों को चुनौती देना जो महिलाओं को सीमित करते हैं, और एक ऐसा माहौल बनाना जहां हर लड़की बिना डर के अपने सपनों की उड़ान भर सके। सुरक्षा का मतलब बंद दरवाजे नहीं होता।

महिला और पुरुष हॉस्टलों में असमानताएं

यदि महिला और पुरुष हॉस्टलों की तुलना करें तो अंतर और भी साफ हो जाता है। लड़कों के हॉस्टलों में गेट अक्सर देर रात तक खुले रहते हैं। बाहर जाने के लिए उन्हें किसी वार्डन से अनुमति नहीं लेनी पड़ती। देर से आने पर उन पर सामूहिक सजा या नोटिस जैसी सख्ती नहीं होती। जबकि लड़कियों के लिए हर छोटी–बड़ी गतिविधि पर रोक–टोक होती है। यह फर्क सिर्फ सुरक्षा का बहाना बनाकर महिलाओं की आजादी पर नियंत्रण को सही

आजादी पर नियंत्रण

ठहराता है। यही भेदभाव हमें बड़े स्तर पर भी देखने को मिलता है। साल 2025 की ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट के मुताबिक, भारत 148 देशों में 131वें स्थान पर है, और हमारा कुल स्कोर सिर्फ करीब 64 फीसदी है। यह दिखाता है कि लैंगिक समानता की दिशा में हमें अभी लंबा सफर तय करना है। शिक्षा और स्वास्थ्य में कुछ सुधार होने के बावजूद, महिलाओं की आजादी और भागीदारी अब भी पीछे छूटी हुई है। हॉस्टलों में नियमों का यह अंतर उसी असमानता की झलक है, जिसे हमें बदलना होगा।

ग्रामीण पृष्ठभूमि की छात्राओं पर हॉस्टल पाबंदियों का प्रभाव

इन पाबंदियों का बोझ उन छात्राओं पर और भी ज्यादा महसूस होता है जो छोटे कस्बों या गांव से पढ़ाई के लिए बाहर आती हैं। घर पर वे पहले से ही तरह–तरह की पाबंदियों और सामाजिक दबाव का सामना करती हैं। जब वे शहरों में पढ़ाई करने आती हैं तो उन्हें लगता है कि अब उन्हें थोड़ा खुला माहौल मिलेगा। लेकिन हॉस्टल में प्रवेश करते ही जब उन्हें फिर से अनुमति–पत्र और हर गतिविधि पर निगरानी जैसी शर्तें झेलनी पड़ती हैं, तो उन्हें लगता है कि वे घर जैसा ही माहौल है। माता–पिता को भरोसा रहता है कि उनकी बेटियां सुरक्षित हैं। लेकिन जब कोई लड़की घर से दूर पढ़ाई के लिए निकलती है, तो वह सिर्फ किताबों की दुनिया में नहीं जाती, वह एक नई जिंदगी की तलाश में निकलती है। खासकर वे लड़कियां जो छोटे कस्बों और गांवों से आती हैं, उनके लिए शहर का हॉस्टल एक उम्मीद होता है। एक ऐसी जगह जहां वे खुद को गढ़ सकें, अपनी आवाज को पहचान सकें, और उन सपनों को जी सकें जिन्हें अक्सर घर की चार दीवारी में दबा दिया जाता है। अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सर्वेक्षण (एआईएचईएस) के अनुसार, भारत में उच्च शिक्षा पाने वाली 20.7 फीसदी से ज्यादा

छात्राएं ग्रामीण पृष्ठभूमि से आती हैं। ज्यादातर के लिए हॉस्टल ही पढ़ाई का सहारा होता है। ऐसे में जब वही पुराने बंधन दोहराए जाते हैं, तो उनके आत्मविश्वास और आजादी पर गहरा असर पड़ता है। जो लड़कियां आत्मनिर्भर बनने का सपना लेकर बाहर निकलती हैं, उनके लिए ये नियम सपने की राह में नई दीवारें खड़ी कर देते हैं। इन पाबंदियों के कई नुकसान होते हैं। देर रात लाइब्रेरी जाने, रिसर्च वर्कशॉप या सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेने से लड़कियां वंचित रह जाती हैं, जिससे उनके शैक्षणिक मौके कम हो जाते हैं। हर समय निगरानी और रोक–टोक मानसिक दबाव पैदा करती है और उनमें असुरक्षा बढ़ने लगती है। सबसे बड़ी बात यह है कि जब लड़कों को छूट और लड़कियों को पाबंदी मिलती है तो असमानता की भावना गहरी होती है।

हॉस्टल नियमों में सुधार की जरूरत

अगर सच में सुरक्षा सुनिश्चित करनी है तो पाबंदियों के बजाय ठोस कदम उठाए जा सकते हैं। जैसे हॉस्टल परिसर में सीसीटीवी और पर्याप्त रोशनी की व्यवस्था हो, महिला और पुरुष दोनों के लिए समान नियम बनाए जाएं, देर रात लौटने वाली छात्राओं के लिए सुरक्षित परिवहन उपलब्ध हो, 24/7 हेल्पलाइन और मेडिकल सुविधाएं दी जाएं । साथ ही शैक्षणिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए समय में लचीलापन रखा जाए और नियम बनाने में छात्राओं की राय भी शामिल की जाए, ताकि वे इन्हें सुरक्षा के रूप में देखें, पाबंदी के रूप में नहीं। किसी भी संस्था के लिए नियम जरूरी हैं, लेकिन उनका उद्देश्य सुरक्षा होना चाहिए, न कि महिलाओं की आजादी पर नियंत्रण। 'सुरक्षा' के नाम पर छात्राओं की आजादी सीमित होना पाबंदी है, न कि सुरक्षा। कई बार ऐसी देखरेख अवसर और बराबरी दोनों छीन लेती हैं। हॉस्टल के कानून तभी सही माने जा सकते हैं जब वे सुरक्षा और बराबरी दोनों को ध्यान में रखें। केवल लड़कियों पर पाबंदियां लगाना असमानता है।

(साभार : hindi.feminisminindia.com)

अच्छी खबर

साइकिल ने बदल दी महिलाओं की जिंदगी

''भारत 1947 में आजाद हुआ था, लेकिन मुझे अपनी आजादी 1992 में मिली।'' 55 साल की जयाचित्रा दक्षिण भारत के एक सरकारी स्कूल में हेड टीचर के रूप में काम करती हैं। 33 साल पहले उनकी जिंदगी तब बदल गई, जब एक जिला अधिकारी ने राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में एक छोटा लेकिन क्रांतिकारी बदलाव किया। इसमें महिलाओं को साइकिल चलाना सीखने के लिए प्रोत्साहित किया गया। जयाचित्रा उन तकरीबन एक लाख महिलाओं में शामिल थीं, जो ग्रामीण और परंपरागत परिवारों से आती थीं और कभी अपने घरों से बाहर भी नहीं निकलीं थीं। साइकिल चलाना सीखकर उन्हें चलने–फिरने की आजादी, आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता मिली।

1990 के दशक की शुरुआत में साइकिल चलाना सीखने वाली कुछ महिलाओं ने आगे चलकर अच्छी तनख्वाह वाली नौकरियां हासिल कीं, जिससे उनकी जिंदगी बदली, और साथ ही उनकी बेटियों और पोतियों का भविष्य भी बदल गया। 1988 में भारत में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की शुरुआत की गई थी। इसका मकसद साक्षरता और गणितीय समझ बढ़ाना और लोगों को उनके बुनियादी अधिकारों के प्रति जागरूक करना था। भारत के दक्षिणी शहर चेन्नई से लगभग 380 किलोमीटर दूर दक्षिण में स्थित पुडुकोट्टई जिले में इस योजना को 'एनलाइटनिंग मूवमेंट' के नाम से जाना गया।

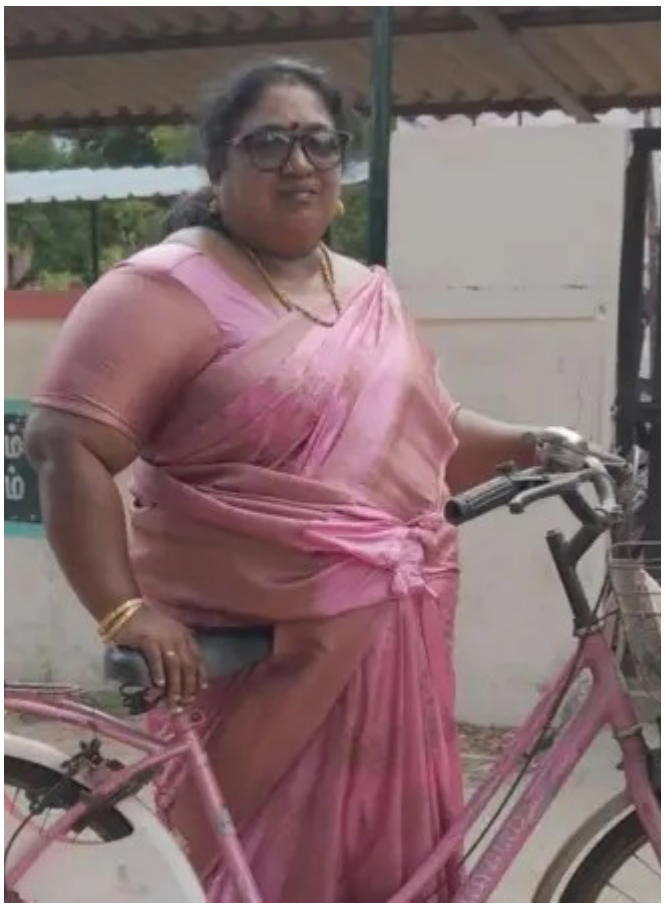

जयाचित्रा को साइकिल ने दी असली आजादी

1991 की जनगणना के मुताबिक, इस जिले में आधे से भी कम महिलाएं पढ़–लिख सकती थीं। लगभग 2,70,000 महिलाएं निरक्षर थीं। इसकी एक बैठक में मौजूद 'एनलाइटनमेंट मूवमेंट' की को–ऑर्डिनेटर कन्नम्मल याद करती हैं, ''साक्षरता मिशन पर मंथन के दौरान यह साफ हो गया कि इस योजना से सबसे ज्यादा लाभ महिलाओं को होगा।'' साक्षरता अभियान ने अनुमान लगाया कि इन महिलाओं को पढ़ाने के लिए 30,000 स्वयंसेवकों की जरूरत होगी, और इसी लॉजिस्टिक चुनौती से साइकिल योजना की शुरुआत हुई। समस्या यह थी कि निरक्षर महिलाओं के परिवार चाहते थे कि उन्हें पढ़ाने वाली शिक्षक भी महिला ही हो, लेकिन बहुत कम महिलाओं के पास खुद का कोई साधन था जिससे वे आ–जा सकें। उस समय जिले की वरिष्ठ सिविल सेवक शीला रानी चंकथ ने कहा, ''उस समय महिलाओं के पास साइकिल या मोपेड तक की सुविधा नहीं थी। वे स्वतंत्र रूप से यात्रा नहीं कर सकती थीं। मुझे लगा कि यह अवसर पैदा करना जरूरी है।'' वो कहती हैं, ''साइकिल चलाने से महिलाओं में आजादी और आत्मविश्वास की भावना आई।''

कुछ अधिकारी महिला स्वयंसेवकों की भर्ती के खिलाफ थे। उनका कहना था कि महिलाएं दूर–दराज के गांवों तक नहीं जा सकतीं। कन्नम्मल बताती हैं, ''लेकिन जिला कलेक्टर (चंकथ) ने उनके तर्कों को खारिज कर दिया।'' वो कहती हैं, ''जब महिलाओं ने स्वतंत्र रूप से यात्रा करना शुरू किया, तो उन्हें अहसास हुआ कि वे सब कुछ कर सकती हैं। इससे पुरुषों द्वारा खड़ी की गई बाकी सभी बाधाओं को तोड़ने का रास्ता खुल गया।'' इस परियोजना ने आगे चलकर अलग–अलग सामाजिक वर्गों की बड़ी संख्या में महिलाओं की मदद की। इनमें महिला टीचर्स और छात्राएं भी शामिल थीं। अपेक्षाकृत पढ़ी–लिखी जयाचित्रा कहती हैं, ''उस समय मैं एक गुलाम की तरह जीवन जी रही थी। मेरे पिता मुझे खिड़की खोलकर बाहर देखने तक की अनुमति नहीं देते थे।''

उस दौर में अविवाहित महिलाओं को अक्सर पुरुषों की नजर से दूर रखा जाता था। वह बताती हैं, ''दसवीं कक्षा पूरी करने

अच्छी खबर

के बाद, मेरे रिश्तेदारों ने मुझसे कहा कि मैं सिलाई या टाइपिंग सीख लूं।'' आम तौर पर इन कामों को महिलाओं के लिए सुरक्षित और उपयुक्त माना जाता था। जयाचित्रा ने गणित में 99 फीसदी अंक हासिल किए थे। इन सुझावों से वह बहुत निराश हो गईं। उनकी मां ने उनकी पढ़ाई के लिए अपने शादी के गहने गिरवी रख दिए, ताकि जयाचित्रा टीचर ट्रेनिंग का कोर्स कर सकें। साक्षरता मिशन के तहत उन्हें पड़ोसी गांव की मुस्लिम महिलाओं को पढ़ाने के लिए चुना गया। जयाचित्रा को अहसास हुआ कि वहां पैदल पहुंचना संभव नहीं होगा। फिर उन्होंने साइकिल चलाना सीखने का मौका हासिल कर लिया।

वह याद करती हैं, ''मैं लंबी स्कर्ट और हाफ साड़ी पहनती थी। उस समय महिलाओं के लिए अलग साइकिल नहीं होती थी, इसलिए मैंने पुरुषों वाली साइकिल पर ही इसे चलाना सीख लिया।'' इससे अपनी तरह की समस्याएं भी सामने आईं। महिलाओं की साइकिल में हैंडल और सीट के बीच की डंडी नीचे होती है, जिससे साड़ी पहनकर चढ़ना और चलाना आसान होता है।

जयाचित्रा कई बार गिर भी गईं, लेकिन साइकिल चलाने के फायदे उन्हें बेहद रोमांचित करते थे। वो कहती हैं, ''मेरी जिंदगी पूरी तरह बदल गई। मैं खुद को एक तितली की तरह महसूस करने लगी। मुझे शाम का इंतजार रहता था, जब मैं साइकिल चलाकर कक्षाओं में जाती थी।'' वो कहती हैं, ''शुरुआत में मेरे पिता इसके खिलाफ थे, लेकिन बाद में उनका मन बदल गया और उन्होंने मेरे लिए साइकिल खरीद दी। वह मेरे जीवन का सबसे अच्छा दिन था।''

वसंता अब उम्र के पांचवें दशक के आखिर में हैं। वो पहले निरक्षर थीं और एक गरीब दलित परिवार से आती थीं। एक ऐसा सामाजिक वर्ग जिसने सदियों तक भेदभाव और अलगाव झेला है। उनकी शादी कम उम्र में हो गई थी और उनके पति भी निरक्षर थे। जब वह एक खदान में औजारों से पत्थर तोड़ने का काम कर रही थीं, तब 'एनलाइटनिंग मूवमेंट' के प्रतिनिधि उनसे मिले। तब तक साइकिल चलाना इस प्रोजेक्ट का एक अहम हिस्सा बन चुका था, और इसमें भाग लेने वाली महिलाएं यह कौशल भी सीख सकती थीं। वसंता ने बताया, ''साक्षरता आंदोलन के लोगों ने हमें बताया कि अगर हम साइकिल चलाना सीखें, तो हमें साइकिल मिल सकती है।''

वह शुरू में झिझक रही थीं और उन्हें शर्म भी आती थी, लेकिन अपने गांव में फैल रहे उत्साह की लहर को वह नजरअंदाज नहीं कर सकी। वो कहती हैं, ''उस समय हमारे गांव में बहुत कम घरों में साइकिल थी, फिर भी मैं एक साइकिल उधार लेकर सीख पाई।'' बाद में उन्होंने अपनी खुद की साइकिल खरीद ली, जिसका इस्तेमाल वह नियमित रूप से घर के लिए पानी लाने में करती थीं।

पढ़ना–लिखना और गिनती सीखने के बाद, उन्होंने अपने जैसी तीन अन्य महिलाओं के साथ मिलकर एक पत्थर खदान पट्टे पर ली और अपना खुद का व्यवसाय शुरू किया। वसंता कहती हैं कि साइकिल कार्यक्रम ने उनका आत्मविश्वास बढ़ाया और उन्हें आजादी और सम्मान दिलाया। अब वह अपनी पोती का सहारा बन रही हैं, जो डॉक्टर बनना चाहती है। आज पुडुकोट्टई के लगभग हर गांव में वसंता जैसी दर्जनों महिलाएं मिल जाएंगी। कुछ ने छोटे व्यवसाय शुरू किए, और कई महिलाएं असंगठित मौसमी कृषि काम से आगे बढ़कर ऑफिस की नौकरियों तक पहुंचीं।

साक्षरता ने महिलाओं को यह समझने में मदद की कि उन्हें बहुत कम मजदूरी दी जा रही थी। कई मामलों में वे सफलतापूर्वक अपनी मजदूरी बढ़वाने में भी कामयाब रहीं। साइकिल चलाने ने महिलाओं को घर से बाहर के जीवन के लिए पुरुष रिश्तेदारों पर निर्भर रहने से मुक्त कर दिया। खासकर उस समय जब अधिकांश गांवों में पक्की सड़कें नहीं थीं और सार्वजनिक परिवहन भी ठीक से विकसित नहीं था।

11 अगस्त, 1992 को पुडुकोट्टई को पूरी तरह साक्षर जिला घोषित कर दिया गया। आज पुडुकोट्टई में महिलाओं को साइकिल चलाते देखना आम बात है, लेकिन जयाचित्रा अब उनमें शामिल नहीं हैं। वह अब स्कूटर का इस्तेमाल करती हैं और उनकी बेटी ने तो कार भी खरीद ली है। जयाचित्रा कहती हैं, ''साइकिल चलाने से मेरे जैसे लोगों में आत्मविश्वास पैदा हुआ। इससे मुझे अहसास हुआ कि मुझे किसी पर निर्भर रहने की जरूरत नहीं है।''

(चित्र और आलेख साभार : www.bbc.com/hindi)

बढ़ा आत्मविश्वास

हर किसी का सपना होता है कि वो जिंदगी में कुछ बने और अपने सपने पूरे करे। मेरा भी सपना था कि मैं अपने पैरों पर खड़ी हो सकूं और अपनी जिम्मेदारियां खुद उठा सकूं। इसी सपने के साथ मैं 23 साल की उम्र में अपने मां–बाप, परिवार और अपने छोटे से शहर को छोड़कर दिल्ली जैसे एक बड़े शहर में आई थी। जर्नलिज्म की पढ़ाई करने के बाद जब मुझे अपने शहर में अपने मुताबिक कोई काम नहीं मिला, तो मेरे एक फ्रेंड ने मुझे दिल्ली आकर जॉब ढूंढने की सलाह दी, जोकि मेरे ही शहर और मेरी ही फील्ड से था और दिल्ली में नौकरी करता था। इतना ही नहीं, मेरे उस फ्रेंड ने मेरे मां–पापा को भी इस बात के लिए राजी किया कि मैं दिल्ली जाकर जॉब करूं।

पहले तो मेरे मां–पापा नहीं माने, लेकिन मेरी खुशी के लिए वो दोनों मुझे खुद से दूर इतने बड़े शहर भेजने के लिए राजी हो गए। इसके बाद मेरी जिंदगी का एक नया सफर शुरू हुआ। मां मुझे दिल्ली छोड़ने आईं थीं।

छोटे शहर की लड़कियाँ

लाल्टू

कितना बोलती हैं
मौका मिलते ही
फव्वारों–सी फूटती हैं
घर–बाहर की कितनी
कहानियाँ सुनाती हैं
फिर भी नहीं बोल पातीं
मन की बातें
छोटे शहर की लड़कियाँ

भूचाल हैं, सपनों में
लावा गर्म बहता
गहरी सुरंगों वाला आस्मान है
जिसमें से झाँकते टिमटिमाते तारे
कुछ कह जाते हैं, मुस्कुराती हैं
तो रंग–बिरंगी साड़ियाँ कमीजें
सिमट आती हैं होंठों तक
रोती हैं तो बीच कमरे खड़े–खड़े
जाने किन कोनों में दुबक जाती हैं
जहाँ उन्हें कोई नहीं पकड़ सकता
एक दिन, क्या करूँ
आप ही बतलाइए, क्या करूँ
कहती उठ पड़ेंगी
मुट्ठियाँ भींच लेंगी
बरस पड़ेंगी मर्दों पर
कभी नहीं हटेंगी फिर सड़कों पर
छोटे शहर की लड़कियाँ

भागेंगी, सरपट दौड़ेंगी
सबको शर्म में डुबोकर
खिलखिलाकर हँसेंगी
एक दिन पौ–सी फटेंगी
छोटे शहर की लड़कियाँ।

(साभार : www.hindwi.org)

बढ़ा आत्मविश्वास

दिल्ली पहुंचने के बाद हम दोनों उसी फ्रेंड के फ्लैट में रुके और उसके बाद मैं पीजी में शिफ्ट हो गई। हमारे दिल्ली पहुंचने के तीसरे दिन मां को लौटना था। उस दिन मैं उनसे लिपटकर खूब रोई और कहा कि मैं अकेले यहां नहीं रह पाऊंगी, मुझे आपके साथ वापस जाना है। मां ने मुझे समझाया और याद दिलाया कि मैं यहां क्यों आई हूं। इसके बाद वो चली गईं। रेलवे स्टेशन पर जैसे ही उनकी ट्रेन चली, मुझे लगा कि मेरे शरीर का कोई हिस्सा मुझसे दूर जा रहा है, क्योंकि इससे पहले मैं कभी भी कहीं अकेले नहीं गई और न अकेले रही।

जिंदगी का सबसे अच्छा एक्सपीरियंस

खैर, घर–परिवार से दूर रहकर अपने वजूद को तलाशने का मेरा ये सफर बहुत सारे उतार–चढ़ावों और एक्सपीरियंस से भरा रहा है। बचपन से ही 'दिल्ली अभी दूर है' वाली कहावत सुनती आ रही मैं अब दिल्ली में थी और ये मेरी जिंदगी का सबसे अनोखा एक्सपीरियंस था। दिल्ली आकर सबसे पहले मैंने एक लोकल अखबार के ऑफिस में इन्टर्नशिप की। सुबह पीजी से बस लेकर मैं ऑफिस जाती थी और शाम को वापस आती थी। दिल्ली आकर मुझे पहली बार पता चला कि यहां हर रूट की अलग बस है और उनके नंबर्स भी अलग हैं। कई बार तो मैं ऑफिस से लौटते वक्त अपने रूट की बस का नंबर तक भूल जाती थी और अपनी रूममेट को फोन करके उससे पूछती थी। कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि मैं गलत बस में बैठ जाती थी और अपने मोहल्ले के बजाय कहीं और पहुंच जाती थी।

मेरी पहली सैलरी

दिल्ली में 8 महीने इन्टर्नशिप करने के बाद मुझे एक जॉब मिली और मेरी पहली सैलरी थी 3500 रुपए। अपनी पहली सैलरी से मैंने मां के लिए साड़ी, पापा के लिए घड़ी और अपनी बड़ी बहन के लिए सूट खरीदा था। जब मुझे मेरी पहली सैलरी मिली, तब लगा था कि खुद के कमाए पैसों की क्या अहमियत होती है। तब मैंने महसूस किया था कि शायद मैं सही ट्रैक पर हूं, लेकिन मुझे अभी और सफर तय करना था। मेरे दिल्ली आने के फैसले पर कई रिश्तेदारों ने ऐतराज जताया था और पैरेंट्स को ऐसा करने से मना भी किया था। मुझे उन सबको ये बताना था कि मेरा फैसला सही है।

खुद संभाली अपनी जिम्मेदारियां

मैं अपने घर में सबसे छोटी हूं, इसीलिए सबसे लाडली भी हूं। दिल्ली आने से पहले मुझे चाय या मैगी बनाने के अलावा कुछ नहीं आता था, लेकिन यहां आकर मैंने सब कुछ बनाना सीखा। मैं जिस पीजी में रहती थी, वहां का खाना बहुत ही खराब था, इसीलिए मैं और मेरी एक रूममेट, हम दोनों एक रेंटेड फ्लैट में शिफ्ट हो गए, ताकि हमें पीजी का बकवास खाना न खाना पड़े। दिन भर ऑफिस में काम करने के बाद मैं थक–हारकर घर लौटती थी और खाना बनाती थी, क्योंकि मैंने और मेरी रूममेट ने सारे काम बांट रखे थे। दिन का खाना वो बनाती थी और रात का मैं। फिर कुछ सालों बाद मेरी रूममेट दिल्ली छोड़कर चली गई और मैं अकेली रहने लगी। इसके बाद मुझे घर और ऑफिस, दोनों की जिम्मेदारियां संभालनी पड़ीं और शायद ये मेरे लिए अच्छा ही हुआ, क्योंकि इससे मुझे समझ में आया कि मल्टीटास्किंग कैसे करते हैं।

पहचान बनाने का मौका

मैं करीब 12 साल दिल्ली में रही और इस दौरान कई संस्थानों में काम भी किया। बहुत से दोस्त बने और बहुत से सीनियर्स से काफी कुछ सीखने का मौका भी मिला। काम में गलती होने पर कई बार डांट भी खाई, लेकिन इन सब चीजों ने मुझे एक बेहतर इंसान बनने में काफी मदद की। दिल्ली में जॉब करने के दौरान मुझे एहसास हुआ कि यहां लोग मुझे मेरे नाम से जानते हैं न कि मेरे पैरेंट्स के नाम से या मेरे परिवार के नाम से। शुरू में पापा मुझे खर्च के पैसे भेजते थे, लेकिन जैसे–जैसे मेरी सैलरी बढ़ने लगी, मैंने उनसे पैसे लेना बंद कर दिया और अपना खर्च खुद उठाने लगी। हालांकि मेरे पैरेंट्स ने कभी मुझसे पैसे नहीं लिए, इसीलिए मैं उन्हें बर्थडे, एनिवर्सरी या किसी त्यौहार पर गिफ्ट ही दे देती थी।

खुद में आया कॉन्फिडेंस

दिल्ली आने से पहले मैं थोड़ी दब्बू और डरपोक टाइप की थी। घर से कॉलेज और कॉलेज से घर, बस यही मेरा रूटीन था, लेकिन दिल्ली आने के बाद मैं जॉब और इंटरव्यू के लिए कई जगह अकेली गई और अकेले घूमी भी। शुरू–शुरू में थोड़ा डर लगता था, लेकिन धीरे–धीरे आदत पड़ गई। दिल्ली आकर मुझमें इतना कॉन्फिडेंस आया कि जो लड़की अपने शहर में लड़कों के छेड़ने पर सिर झुकाकर चुपचाप वहां से चली जाती थी, वो अब लड़कों की बदतम. ीजी का जवाब देने की हिम्मत करने लगी थी। अपने घर में मैं कभी रात के वक्त अकेले बाहर नहीं रही, लेकिन यहां रात को ऑफिस से छूटने के बाद मुझे अकेले ही घर जाना पड़ता था। कई बार ऐसा भी हुआ है कि रात को 11 बजे मैं अकेले बस स्टॉप पर खड़ी रहती थी और आने–जाने वाले मुझे घूरते थे, लेकिन धीरे–धीरे इन नजरों और इन लोगों की आदत पड़ गई और अब मुझे किसी भी चीज से डर नहीं लगता। दिल्ली के इन 12 सालों ने मेरे अंदर इतना आत्मविश्वास पैदा कर दिया है कि अब मैं कहीं भी अकेले आ–जा सकती हूं या कुछ भी कर सकती हूं। जॉब के लिए एक बड़े शहर में जाने का फैसला शायद मेरी जिंदगी का सबसे अच्छा फैसला था।

(साभार : www.idiva.com में प्रकाशित प्रीति जायसवाल का आलेख)

पटना का हाल

हॉस्टल संचालकों को सजग रहना होगा

लड़कयों को अपनी आजादी के साथ–साथ सुरक्षा पर भी ध्यान देना चाहिए

घर से दूर हॉस्टल में रहकर पढ़ाई करना आज के समय में आम बात हो गई है। सुविधाएं और विकल्प तो कई मौजूद हैं लेकिन एक बात जो सबसे बड़ी है वो इस तथ्य की जांच करना कि क्या हॉस्टल या पीजी जहां बच्चे रह रहे हैं, वे वाकई सुरक्षित हैं? पटना कोचिंग क्लासेस और हॉस्टल का केंद्र बना हुआ है। बिहार के लगभग हर जिले से लड़कियां यहां आकर पढ़ाई करती हैं और किसी न किसी हॉस्टल या पीजी में रहती हैं। हाल ही में यहां के एक हॉस्टल में नीट की परीक्षा की तैयारी कर रही एक छात्रा की मौत के मामले ने सुरक्षा को लेकर गंभीर सवाल खड़े कर दिए हैं। ऐसे में हमने पटना के बुद्धा कॉलोनी में चल रहे एक हॉस्टल की संस्थापिका तथा लड़कियों से बात की।

पटना के रॉयल गर्ल्स पीजी की संस्थापिका संध्या सिंह

हॉस्टल संचालकों को अभिभावक बनना होगा

पटना के रॉयल गर्ल्स पीजी की संस्थापिका संध्या सिंह बताती हैं कि उनके यहां पिछले नौ साल से लड़कियां आ रही हैं और न तो लड़कियों और न ही उनके माता–पिता की तरफ से कोई शिकायत आई है। उनका कहना है कि हॉस्टल या पीजी में भोजन की गुणवत्ता और बाकी सुविधाओं पर ध्यान दिया जाना तो जरूरी है ही लेकिन उससे भी अधिक आवश्यक है वहां मौजूद सुरक्षा व्यवस्था की पड़ताल करना। एक हॉस्टल या पीजी मालिक खुद लड़कियों के साथ किस तरह का व्यवहार करता है, यह देखा जाना बहुत जरूरी है। जो हॉस्टल संचालक या संचालिका लड़कियों के साथ अभिभावक की तरह पेश आते हैं और उनका ध्यान अपने बच्चों की तरह रखते हैं, वहां रहने वाली लड़कियां भी खुद को सुरक्षित महसूस करती हैं।

सुरक्षा सबसे जरूरी

पीजी में रह रही पूर्णिया की मुस्कान (काल्पनिक नाम) भी ऐसा ही मानती हैं। उनका कहना है कि अगर पीजी या हॉस्टल का माहौल घर जैसा हो तो वो सुरक्षित महसूस करती हैं। हमारे पीजी की संस्थापिका मां की तरह सभी लड़कियों का ध्यान रखती हैं और कहीं भी आने–जाने का ख्याल रखती हैं। मुस्कान कहती हैं कि अगर इस तरह से कोई आपका ध्यान रखता है तो इससे कोई झुंझलाहट नहीं होती है बल्कि सुरक्षित महसूस होता है और घर से दूर रहना आसान हो जाता है।

पढ़ाई के प्रेशर में आ जाती हैं लड़कियां

मोतिहारी से आई एक लड़की ने बताया कि अक्सर लड़कियां पढ़ाई को अत्यधिक बोझ मान लेती हैं और उसके दबाव में आ जाती हैं। हम अक्सर समाचारों में देखते हैं कि हॉस्टल में रहकर प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रही किसी लड़की या लड़के ने जान दे दी। इसके लिए माता–पिता को तो अपने बच्चों के प्रति संवेदनशील होने की जरूरत है ही, साथ ही हॉस्टल या पीजी संचालकों को भी सजग रहना होगा।

गयाजी से पटना आकर मेडिकल की तैयारी कर रही दिशा (काल्पनिक नाम) ने कहा कि अगर हॉस्टल का माहौल अनुकूल हो तो कोचिंग जाने–आने या बाहर निकलने पर भी मन शांत और स्वस्थ रहता है। हम जालसाजों और झूठ बोलकर फंसाने वाले लोगों से सावधान रहते हैं, लेकिन अगर हॉस्टल या पीजी चलाने वाले लोगों की मंशा ही साफ नहीं होती है और वे लड़कियों के जरिये केवल कमाई करने की नीयत रखते हैं तो फिर कई बार लड़कियां वहां से ही भटक जाती हैं और गलत लोगों के चंगुल में फंस जाती हैं। मुंगेर की रीतिका (काल्पनिक नाम) ने भी माना कि अगर लड़कियां सतर्क होंगी तो हादसे अपने आप कम हो जाएंगे।

सही हॉस्टल का चुनाव बेहद जरूरी

संध्या कहती हैं कि नए शहर में आकर पढ़ाई करना कई बार चुनौतीपूर्ण हो जाता है। घर से दूर, नए माहौल में ढलना और साथ ही पढ़ाई का दबाव संभालना– यह सब मिलकर कभी–कभी लड़कियों को भावनात्मक रूप से थका देता है। ऐसे में जरूरी है कि माता–पिता बच्चों के साथ नियमित संवाद बनाए रखें और लड़कियां खुद अपने लक्ष्य को सामने रखकर आगे बढ़ती रहें। एक अच्छा हॉस्टल इसी काम आता है। वह न सिर्फ सुरक्षित छत देता है, बल्कि एक ऐसा अनुशासित माहौल भी बनाता है जिसमें लड़कियां पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित कर सकें। सही हॉस्टल का चुनाव इसीलिए बेहद जरूरी है।

A CSR Project
of
Coal India Limited

A MAHARATNA COMPANY

5 DECADES OF UNEARTHING ENERGY

EQUITY FOUNDATION
A Forum for Woman and Child

123-A, Patliputra Colony
Patna-800013
Call @ 7004227803/6207092051
Email- equityasia@gmail.com

कुशल

PROMOTING DIGITAL LITERACY AMONG THE UNDERPRIVILEGED STUDENTS

(FREE Computer classes (10+2 onwards)

www.emanjari.com

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13

equityasia@gmail.com
www.emanjari.com
06122270171
6207092051
7979772023

RNI Title Code: BIHBIL02442

© इक्विटी फाउंडेशन